सप्तम अंक

वर्ष 4 संख्या 1
जनवरी-जून, 2022

कृषि-जीवन

बुन्देलखण्ड कृषि इन्द्रधनुषी क्रांति की ओर अग्रसर

रानी लक्ष्मी बाई केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालय
झाँसी-284003 (उ.प्र.) भारत

कृषि-जीवन

वर्ष 4 संख्या-1
जनवरी-जून, 2022

संरक्षक
डॉ. अशोक कुमार सिंह
कुलपति

मुख्य संपादक
डॉ. अनिल कुमार
(निदेशक, शिक्षा)

संपादक
डॉ. मनमोहन जे. डोबरियाल
(अधिष्ठाता, उद्यानिकी एवं वानिकी)

संपादक सलाहकार
डॉ. एस. के. चतुर्वेदी
(अधिष्ठाता, कृषि संकाय)
डॉ. ए. आर. शर्मा
(निदेशक, शोध)
डॉ. मुकेश श्रीवास्तव
(कुलसचिव)
डॉ. एस. एस. सिंह
(निदेशक, प्रसार शिक्षा)

संपादक मण्डल
डॉ. गोविन्द विश्वकर्मा
डॉ. गौरव शर्मा
डॉ. रामप्रकाश यादव
डॉ. शुभा त्रिवेदी
डॉ. राकेश चौधरी
डॉ. रुमाना खान
(रा. ल. बा. के. कृ. वि. वि., झाँसी)
डॉ. मनीत राणा
(भा. चा. एवं चा. अनु. सं., झाँसी)

पत्रिका में प्रकाशित लेख एवं विचार लेखकों के अपने निजी है। संपादक, प्रकाशक की सहमति और उत्तरदायी होना अनिवार्य नहीं है। लेख में लेखक का पूरा पता प्रकाशित किया जाता है। अतः कोई भी जानकारी लेखक से ली जा सकती है।

निदेशक
ई-मेलः directoreducation-rlbcau@gmail-com

अनुक्रमणिका

कुलपति जी की कलम से
संपादकीयः ''जनजातीय कृषि एवं कृषि वानिकी''

इस अंक में:

1. शीत मरूस्थल जनजांतीय क्षेत्र लाहौल-स्पिति में कृषि-वानिकी का महत्व एवं सम्भावनाएं
   नवजोत सिंह कलेर, सुमित वशिष्ठ, उपेन्द्र शर्मा, निधीश गौतम, सुधीर वर्मा, आर. पी. यादव, प्रबल शर्मा एवं प्रवीन
2. भारत में स्थानांतरण खेती और अन्य पारंपरिक कृषि प्रणालियों का नवीनतम अनुप्रयोग
   स्वाती शेडगे, रविंद्र कुमार ढाका एवं मनमोहन डोबरियाल
3. वन उत्पाद-वन आश्रित आदिवासियों के कमाई का महत्वपूर्ण जरिया
   डॉ. अमेय काले एवं डॉ. मनमोहन डोबरियाल
4. बुंदेलखंड क्षेत्र के बहुमूल्य वन संसाधन एवं उसमें रोजगार के अवसर
   डॉ. मुहम्मद नासिर
5. लेह-लद्दाख क्षेत्रों में खुबानी की खेती
   रोहित कुमार, डेस्कयोंग नामग्याल, डॉ आनंद कुमार कटियार एवं डॉ सेरिंग स्तोबदन
6. भारत में कृषि वानिकी की क्षमताओं का सदुपयोग करना
   कुसुम अरूणाचलम्, महेश गुप्ता एवं ए. अरूणाचलम
7. कृषि-वानिकी में फलदार वृक्षो से आय वर्धन
   गोविंद विश्वकर्मा, फातिमा जमान, रंजीत पाल, सुकन्या मिश्रा, गौरव शर्मा, राजीव कुमार, लालचंद जाट एवं शिवाली शर्मा
8. भारत में कृषि वानिकीः किसानों के लिए वर्तमान के समय की जरूरत
   डॉ. गिरधारी लाल मीना, डा. लतिका शर्मा एवं डा. अर्जुन सिंह राजपूत
9. कृषि वानिकी, खाद्य सुरक्षा और पोषण
   राम प्रकाश यादव, प्रभात तिवारी, राकेश कुमार एवं एम. जे. डोबरियाल
10. चन्दन की उत्तम खेती के लिए वैज्ञानिक तकनीक
    आरजू, कमलेश वर्मा, अश्वनी कुमार, राजकुमार, सुनिता देवी एवं अनिता मान
11. मखाने का फसलोत्तर तकनीकी एवं उपयोग
    रोहित कुमार, डॉ. अमित कुमार सिंह एवं संदीप गौतम
12. जलवायु स्मार्ट कृषि वानिकी
    मंगल सिंह, अनुज कुमार, सत्यवीर सिंह, अनिल कुमार खिप्पल, राजकुमार एवं ज्ञानेन्द्र प्रताप सिंह
13. बुन्देलखण्ड के लिए जलवायु अनुरूप कृषि तकनीकी
    अनिल कुमार दोहरे, गौतम सिंह, भगवान दास कुशवाहा एवं लखन लाल अहिरवार
14. जलागम प्रबंधन के साथ पारिस्थितिकी संतुलन
    गौतम सिंह, दीपक मौर्य, अनिल कुमार दोहरे, भगवान दास कुशवाह एवं लखन लाल अहिरवार
15. कृषि क्षेत्र में नवाचार

प्रकाशक : शिक्षा निदेशालय,
रानी लक्ष्मी बाई केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालय, झाँसी-284 003 (उ. प्र.) भारत

कापीराइटः रानी लक्ष्मी बाई केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालय, झाँसी

कुलपति जी की कलम से ....

जनजातीय कृषि प्रणाली प्रतिकूल मौसम की स्थिति में भी उत्पादन के अनेक अवसर उपलब्ध कराती है। इसलिए जलवायु परिवर्तन और अनियमित मौसम के समय में भी पर्यावरण के अनुकूल, कृषि प्रणाली की प्रासंगिकता वर्तमान समय में और बढ़ गई है। जनजातीय कृषि की प्रमुख विशेषताएँ जैसे छोटी जोत, भूमि का सीमित उपयोग, परम्परागत कृषि तकनीक, कम पूँजी निवेश और प्राकृतिक तरीके से उत्पादन हैं। भारत में जनजातीय कृषि के कई प्रकारों में झूम पद्धति, स्थानांतरित कृषि, उतेरा कृषि, आदि प्रमुख है।

अचानक आने वाली बाढ़, सूखा, बेमौसम बारिश, ओलावृष्टि, ग्रीष्म व शीत लहरें (जो फसलों के लिये अनुपयुक्त तापमान उत्पन्न करती हैं) जैसी घटनाएँ कृषि क्रियाओं को नई जलवायु वास्तविकताओं के अनुकूल बनाने की माँग प्रस्तुत करती है। इस परिदृश्य में कृषि-वानिकी पद्धति भारत के साथ-साथ अन्य विकासशील देशों के लिये अत्यंत महत्वपूर्ण है। बुनियादी ढांचे की कमी, कठिन परिस्थिति, मौसम की अनियमितता एवं कृषि पर निर्भरता के दृष्टिगत जनजातीय व परम्परागत कृषि को नए आयामों के क्षेत्रों में आजीविका के नए स्रोत विकसित करने की जरूरत है। मोटे अनाज जैसे ज्वार, बाजरा, रागी, कोदो, सांवा आदि एवं पारम्परिक सब्जियाँ कम उत्पादकता के साथ जनजातीय क्षेत्रों में उगाई जाती है। संतुलित आर्थिक विकास के लिए यह जरूरी है कि इन क्षेत्रों का विकास कृषि एवं परिवार आधारित मॉडल पर किया जाए।

कृषि-वानिकी भूमि के पारंपरिक और आधुनिक उपयोग का एक संयोजन है जहाँ फसलों के साथ-साथ पशु उत्पादन एवं पेड़ों का समग्र प्रबन्धन होता है। कृषि वानिकी एक ऐसी प्रथा है जिसका तात्पर्य पेड़ों के साथ कृषि से है, जिसमें पर किसान, पशुधन, पेड़ और जंगल आदि शामिल हैं। यह आर्थिक और पर्यावरणीय दोनों तरह से पर्याप्त लाभप्रद व अधिक उत्पादन कर सकती है और वानिकी या कृषि बहुसंस्कृति की तुलना में अधिक टिकाऊ साबित हो सकता है। इसके अलावा वन आवरण के प्रभावी संरक्षण, मिट्टी के कटाव, लवणता और जल स्तर के नियंत्रण, मिट्टी के जैविक कार्बन में वृद्धि के माध्यम से संरक्षण और समप्रबंधन कर सकता है, फलतः सभी स्तरों पर अधिक विविध कृषि अर्थव्यवस्था स्थापित करने में मदद करती है।

जनजातीय लोग कई समस्याओं से घिरे रहते हैं जो व्यक्तिगत और सामुदायिक दोनों स्तरों पर काम करते है। इसी के साथ गरीबी और निवेश की कम क्षमता के साथ निवेश की अनुपलब्धता, खेती के तरीकों, बीजों की उन्नत किस्मों एवं अन्य आदानों के बारे में अपर्याप्त ज्ञान और उचित बाजारों की कमी आदिवासी किसानों को पारम्परिक फसलों की खेती करके निर्वाह करने के लिए मजबूर करती है। आदिवासी किसानों को कृषि विज्ञान केन्द्रों के माध्यम से नयी जानकारी देने के लिए देश में चल रहे 732 कृषि विज्ञान केन्द्रों में से 125 जनजातीय बाहुल्य वाले क्षेत्रों में काम कर रहे हैं। आदिवासी क्षेत्रों में ऐसी फसलें आज भी हैं जैसे नाईजर, तिल, कोदों, काकुन, कुटकी और रागी जो औषधीय गुणों के साथ-साथ काफी उच्च्य पोषकता व गुणवत्ता वाली हैं। ऐसे में इन मोटे अनाजों को खेती को बढ़ावा देने के लिए भी काम किया जा रहा है।

कृषि जीवन के सांतवें अंक के लिए जनजातीय कृषि एवं कृषि-वानिकी के विभिन्न आयामों को समर्पित अंक प्रस्तुत करते हुए हर्ष की अनुभूति हो रही है। डॉ. अनिल कुमार, निदेशक शिक्षा के नेतृत्व में इस दिशा में किये गए प्रयास सराहनीय हैं। समस्त संपादक मण्डल सदस्य इसके लिए बधाई के पात्र है।

(अशोक कुमार सिंह)
कुलपति

सम्पादकीय

''जनजातीय कृषि एवं कृषि वानिकी''

भारत में अफ्रीका के बाद दुनिया में सबसे बड़ी सामाजिक जनजातीय आबादी है। जनसंख्या जनगणना (2011) के अनुसार भारत में अनुसूचित जनजातियों की संख्या 10,42,81,034 है। यह भारत की कुल जनसंख्या का 8.6 प्रतिशत है। अनुसूचित जनजातियों के कुल 9,38,19,162 लोग ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करते हैं जबकि शहरी क्षेत्रों में 1,04,61,872 लोग निवास करते हैं। अनुसूचित जनजाति ग्रामीण क्षेत्रों की कुल आबादी का 11.3 प्रतिशत और शहरी क्षेत्रों का 2.8 प्रतिशत है। भारत में लगभग 550 जनजातियाँ हैं। जनजातियों की प्रमुख आबादी छत्तीसगढ़, उड़ीसा, झारखंड, मध्य प्रदेश, उत्तर पूर्वी राज्यों और अंडमान और निकोबार द्वीप समूह में पाई जाती है। आदिवासी लोगों को जंगलों, पहाड़ियों और दूरदराज के इलाकों से दृढ़ता से जुड़ा हुआ देखा गया है, एक अनूठी जीवन शैली का अभ्यास करते हुए, सांस्कृतिक और धार्मिक विश्वासों का एक अनूठा समूह रखते हैं।

जनजातीय क्षेत्रों में ज्ञान प्रणाली एवं परिवार आधारित कृषि प्रबंधन में विशिष्ट स्वदेशी संस्कृति है, परंतु भौगोलिक परिस्थिति के कारण इन क्षेत्रों का विकास एवं यहाँ के लोगों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति में अपेक्षाकृत कम सुधार हुआ है। इन क्षेत्रों में स्थानीय कृषि ही आजीविका की प्रमुख धूरी है। आदिवासी समुदाय (अनुसूचित जनजाति) भूमि के लगभग 11 प्रतिशत हिस्से पर खेती से जुड़ा काम करते हैं जो ग्रामीण इलाकों में उनकी जनसंख्या की हिस्सेदारी के बराबर है। इनमें से अधिकांश भूमि दूर-दराज वाले इलाके में है, जिसमे सिंचाई का कोई इंतजाम नहीं है और सड़कें भी नहीं पहुँची हैं। इसमें जीवन निर्वाह खेती के लिए समुदायों द्वारा संचालित वन भूमि भी शामिल है। देश के आदिवासी क्षेत्र बहुत ही उपजाऊ हैं। रासायनिक खादों की पहुँच से दूर ये क्षेत्र जैविक व प्राकृतिक खेती के साथ टिकाऊ खेती के लिए जाने जाते हैं। यहाँ के उत्पादों में विशेष गुण पाए जाते हैं, जैसे कड़कनाथ मुर्गे के माँस को विश्व के सबसे स्वादिष्ट एवं उपयोगी माना गया है। ऐसे में इन क्षेत्रों में प्रचलित फसलों की उत्पादकता बढ़ाने के साथ राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर यहाँ के उत्पादों के विशेष गुणों एवं स्वाद का प्रचार-प्रसार करने के लिए भी योजना बनाने की आवश्यकता है।

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद पिछले तीन वर्षों में जनजातीय क्षेत्रों को सुदृढ़ करने के लिए काम कर रहा है। इसी कड़ी में आदिवासी किसानों को खेती-बाड़ी और कृषि अनुसंधान की जानकारी देने के लिए आदिवासी बाहुल्य क्षेत्र असम और झारखंड में नए केन्द्रीय कृषि अनुसंधान संस्थान स्थापित किए गए हैं। वहीं उत्तरपूर्वी क्षेत्र में 6 नए कृषि कॉलेज को स्थापित किया गया है। इन क्षेत्रों में 10 नये कृषि विज्ञान केन्द्र भी खोले गए हैं। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के सभी संस्थानों को आदिवासी क्षेत्रों में काम करने के लिए धन भी उपलब्ध कराया गया है। सभी संस्थान आदिवासी क्षेत्रों में फसल उत्पादन, बागवानी, पशुपालन, मछली उत्पादन एवं वानिकी का प्रशिक्षण देने के लिए काम कर रहे हैं। हाल ही में, भारत के माननीय प्रधान मंत्री ने किसानों के खेतों में मेढों पर पेड़ उगाकर कृषि प्रणाली में कृषि वानिकी को एकीकृत करने की आवश्यकता पर फिर से जोर दिया है। प्रसिद्ध स्लोगन ''हर खेत पर मेड़ व हर मेढ़ पर पेड़'' इस अवधारणा की ओर सभी हितधारकों का पर्याप्त ध्यान आकर्षित किया है और कृषक समुदाय के बीच जागरूकता पैदा की है। बढ़ते पेड़, विशेष रूप से स्वदेशी पेड़ों की प्रजातियाँ, छोटे और सीमांत किसानों को अतिरिक्त आय प्रदान करने के साथ-साथ टिकाऊ कृषि को बढ़ावा देने के साथ-साथ मिट्टी की समृद्धि को बढ़ाती हैं और कई तरह से पारिस्थितिकी तंत्र सेवाओं में योगदान करती हैं। वृक्षों को कृषि प्रणाली में शामिल करने से निश्चित रूप से किसानों की आय दोगुनी करने में योगदान मिलेगा।

विश्व स्तर पर, कृषि वानिकी का अभ्यास सभी कृषि भूमि के 43 प्रतिशत से अधिक पर किया जाता है, जिसमें 30 प्रतिशत ग्रामीण आबादी शामिल है, जिसके पास 1 बिलियन हेक्टेयर से अधिक भूमि और 900 मिलियन से अधिक लोग हैं। भारत में, कृषि वानिकी के तहत क्षेत्र 13 कृषि-जलवायु क्षेत्रों में फैले लगभग 24.58 मिलियन हेक्टेयर होने का अनुमान है। हाल के एक अनुमान के अनुसार, देश अपनी इमारती लकड़ी की लगभग 70 प्रतिशत जरूरतों को कृषि वानिकी के माध्यम से पूरा करने में सक्षम है, जिसका मूल्य लगभग रु. 14,000 करोड़ सालाना और लगभग 26,500 लकड़ी आधारित उद्योगों को प्रमुख कच्चा माल प्रदान करता है। यह पेपर पल्प, प्लाइवुड, छोटी इमारती लकड़ी के लिए कच्चे माल की 60-70 प्रतिशत से अधिक और देश में हरे चारे की 9-11 प्रतिशत माँग को भी पूरा करता है।

कृषि वानिकी पर्यावरण और आजीविका के साथ खाद्य उत्पादन प्रणालियों को जोड़ने वाले कई सतत् विकास लक्ष्यों (एसडीजी) को संबोधित करती है। यह भोजन और चारे की आवश्यकताओं को पूरा करने वाला एक व्यवहार्य भूमि उपयोग विकल्प है। यह स्पष्ट है कि प्राकृतिक संसाधनों (मिट्टी, पानी, जैव विविधता आदि) के पारिस्थितिक रूप से अस्थिर उपयोग और उनके आगे क्षरण से अर्थव्यवस्था और स्थिरता की तुलना में खाद्य और पर्यावरण सुरक्षा को खतरा है। इस संबंध में, जलवायु से संबंधित जोखिमों के खिलाफ अधिक लचीलेपन के लिए कृषि प्रावधानों में वृक्ष एकीकरण और दीर्घकालिक पर्यावरणीय लाभों को प्राप्त करने और जैविक विविधता को बनाए रखने के लिए एक किसान की परिचालन आसानी का लाभ उठाता है। सही मायने में, संयुक्त राष्ट्र ने 2021 से शुरू होने वाले अगले दशक को बहाली के अंतर्राष्ट्रीय दशक के रूप में घोषित किया, जो जैव विविधता के

अंतर्राष्ट्रीय दशक (2011-2020) को सफल बनाता है। भारत दुनिया का प्रथम देश है जिसने 2014 में कृषि-वानिकी नीति लागू की व उसके राष्ट्रीय टिकाऊ कृषि वानिकी निति भी शुरु किया।

जलवायु के मोर्चे पर, कृषि वानिकी 2030 के लिए भारत के राष्ट्रीय स्तर पर निर्धारित योगदान के लक्ष्यों को प्राप्त करने और ग्रीन हाउस गैस की उत्सर्जन तीव्रता को 2005 के स्तर से 33-35 प्रतिशत कम करने और 2.5-3 गिगाटन कार्बन डाइऑक्साइड का एक अतिरिक्त (संचयी) कार्बन सिंक बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। कृषि वानिकी को जलवायु परिवर्तन के प्रति लचीलापन बढ़ाने और विकासात्मक गतिविधियों के कार्बन पदचिह्न को कम करने के लिए अंतिम उपकरण के रूप में मान्यता दी गई है। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर निर्धारित योगदान को प्राप्त करने के लिए, 23 देशों ने कृषि वानिकी को शमन के लिए प्राथमिकता के रूप में और 29 देशों ने अनुकूलन के लिए मान्यता दी है।

उपरोक्त सभी तथ्यों को ध्यान में रखते हुए स्वदेशी बहुउद्देश्यीय वृक्ष प्रजातियों को कृषि वानिकी प्रणालियों में लाने की माँग और आवश्यकता है क्योंकि कई कम उपयोग और उपेक्षित वृक्ष प्रजातियां धीरे-धीरे अपने प्राकृतिक आवास से गायब हो रही हैं। पोषक तत्वों से भरपूर फलों, सब्जियों और चिकित्सीय और औषधीय महत्व के उत्पादों के एक महत्वपूर्ण स्रोत के रूप में इन स्वदेशी आनुवंशिक संसाधनों पर तत्काल ध्यान देने की आवश्यकता है। ऐसी प्रजातियों के आनुवंशिक सुधार में बारहमासी आदत, वुडी बनावट, लंबी किशोर अवधि, विषम प्रकृति और अनैच्छिक आनुवंशिक विविधता के कारण कई अंतर्निहित चुनौतियाँ हैं। इन प्रजातियों के तेजी से और केंद्रित सुधार के लिए पारंपरिक तरीकों के अलावा जीनोमिक्स के आधुनिक उपकरणों के उपयोग की आवश्यकता है। किसानों के खेतों और गृह वाटिका में उपयुक्त वृक्ष प्रजातियों को उगाने से अंततः कृषि जैव विविधता के संरक्षण और छोटे और सीमांत किसानों को अतिरिक्त आजीविका सहायता के प्रावधान के दोहरे उद्देश्य की पूर्ति होगी।

(अनिल कुमार)

विषय सूची

क्र.स.	शीर्षक	पृष्ठ सं.
1.	शीत मरूस्थल जनजातीय क्षेत्र लाहौल-स्पिति में कृषि वानिकी का महत्व एवं सम्भावनाएं	1
2.	भारत में स्थानांतरण खेती और अन्य पारंपरिक कृषि प्रणालियो का नवीनतम अनुप्रयोग	3
3.	वन उत्पाद-वन आश्रित आदिवासियों के कमाई का महत्वपूर्ण जरिया	6
4.	बुंदेलखंड क्षेत्र के बहुमूल्य वन संसाधन एवं उसमें रोजगार के अवसर	8
5.	लेह-लद्दाख क्षेत्रों में खुबानी की खेती	11
6.	भारत में कृषि वानिकी की क्षमताओं का सदुपयोग करना	14
7.	कृषि-वानिकी में फलदार वृक्षो से आय वर्धन	18
8.	भारत में कृषि वानिकीः किसानों के लिए वर्तमान के समय की जरूरत	21
9.	कृषि वानिकी, खाद्य सुरक्षा और पोषण	27
10.	चन्दन की उत्तम खेती के लिए वैज्ञानिक तकनीक	31
11.	मखाने का फसलोत्तर तकनीकी एवं उपयोग	34
12.	जलवायु स्मार्ट कृषि वानिकी	38
13.	बुन्देलखण्ड के लिए जलवायु अनुरुप कृषि तकनीकी	43
14.	जलागम प्रबन्धन के साथ पारिस्थिकी संतुलन	46
15.	कृषि क्षेत्र में नवाचार	49

शीत मरूस्थल जनजातीय क्षेत्र लाहौल-स्पिति में कृषि-वानिकी का महत्व एवं सम्भावनाएं

नवजोत सिंह कलेर[1], सुमित वशिष्ठ[2], उपेन्द्र शर्मा[2], निधीश गौतम[2], सुधीर वर्मा[2], आर. पी. यादव[3], प्रबल शर्मा[1] एवं प्रवीन[1]

[1]औद्यानिकी एवं वानिकी महाविद्यालय, नेरी, हमीरपुर

[2]कृषि विज्ञान केन्द्र, ताबो, जिला-लाहौल स्पिति

[3]रानी लक्ष्मी बाई केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालय, झाँसी

ई-मेलः kalernavjot8888@gmail.com

सारांश

शीत मरूस्थल क्षेत्र हिमाचल प्रदेश के ऊँचे पहाड़ी जिले लाहौल-स्पिति में फैला है जो कि राज्य का सबसे अधिक क्षेत्र वाला जिला है। बढ़ती हुई जनसंख्या एवं बदलती हुई जलवायु से इस क्षेत्र पर लगातार नकारात्मक दबाव बढ़ रहा है। इस क्षेत्र में जनजातीय लोगों के पास संसाधनों की भी कमी है और वह अधिकतम तौर पर अपनी जरूरतों को पूरा करने के लिए प्रकृति पर निर्भर है। इन सब समस्याओं के समाधान के लिए कृषि-वानिकी पद्धति यहाँ के लिए उपयोगी सिद्ध होगी।

परिचय

लाहौल-स्पिति जिला हिमाचल प्रदेश राज्य का सबसे ज्यादा क्षेत्रफल वाला जिला है जो कि अधिकतम शीत मरूस्थल के अंतर्गत आता है व इसके सिर्फ 5 प्रतिशत में ही खेती की जाती है। यह क्षेत्र पूरे साल शुष्क एवं ठंडी परिस्थितियों के साथ 3000-4700 मी. तक की समुंद्र तल से ऊँचाई पर स्थित है जो साल में 6-7 महीने बर्फ से भी ढका रहता है। इस क्षेत्र में वर्षा मुख्य रूप से बर्फ के रूप में होती है एवं इसके साथ वार्षिक वर्षा लगभग 250 मी.मी. से भी कम होती है। सर्दियों में इस क्षेत्र का तापमान -300 से. से भी नीचे गिर जाता है जो इस क्षेत्र के वातावरण को दुर्गम एवं कठिन बनाता है। यहाँ की मिट्टी रेतिली, दोमट एवं पथरीली है जिसमें नमी न के बराबर है। इन सब कारणों के अलावा यहां के लोगों की जनसंख्या कम होने से एवं उनके पास औसत भूमि कम होने की वजह से यहां के लोग सीमित कृषि फसलें ही अपने खेतों में पेड़ों के साथ उगाते हैं और अपना जीवन निर्वाह करते हैं। इसके साथ-साथ स्थानीय लोग बड़े पैमाने पर अपनी आवश्यकताओं के लिए प्राकृतिक संसाधनों पर निर्भर हैं। इस क्षेत्र की प्रकृतिक सम्पदा पर जलवायु परिवर्तन, जनसंख्या वृद्धि, प्राकृतिक आपदाएं, आवास विखंडन और पर्यटन की वजह से निरंतर दबाव एवं खतरा बढ़ रहा है जो कि एक गंभीर समस्या का रूप ले चुका है और जिसका समाधान केवल इस दुर्गम क्षेत्र में कृषि-वानिकी को अपनाकर ही किया जा सकता है।

कृषि-वानिकी का महत्व एवं संभावनाएं

कृषि-वानिकी दो शब्दों कृषि एवं वानिकी से मिलकर बना है जिसमें भूमि पर कृषि फसलों को पेड़ों के साथ इस तरह से समावेश किया जाता है कि वह दोनों एक दूसरे के विकास में महत्वपूर्ण योगदान करें और किसान को कम भूमि से एक साथ बहुत सारे लाभ प्रदान करें। लाहौल-स्पिति का दुर्गम वातावरण, कठिन परिस्थितियां एवं नाजुक परिस्थितिक तंत्र होने के कारण यहाँ के लिए कृषि-वानिकी बहुत महत्वपूर्ण है। कृषि-वानिकी में भूमि से एक साथ बहुत सारे लाभ लिए जा सकते हैं जैसे खाना, पशुओं के लिए चारा, ईंधन के लिए लकड़ी, फल, इमारती लकड़ी इत्यादि। कृषि-वानिकी की तकनीक से इस जनजातीय क्षेत्र में किसान बेकार बंजर भूमि का वैकल्पिक उपयोग कर पोषक तत्वों के जमाव से भूमि सुधार कर सकते हैं और बहुत सारे लाभ प्राप्त कर सकते हैं। यह इस क्षेत्र के लोगों के लिए रोजगार के अवसर भी प्रदान करेगा।

लाहौल स्पिति में विभिन्न प्रकार की कृषि-वानिकी पद्धतियों को अपनाया जा सकता है जो इस प्रकार से हैंः

पद्धतियाँ	विभिन्न समावेश
एग्री–सिल्वीकल्चर (कृषि फसलें + इमारती एवं ईंधन की लकड़ी वाले पेड़)	गेहूँ / जौ / काला मटर / हरा मटर / फूलगोभी / बंदगोभी / शलगम / मूली / गाजर / आलू + ब्यूँस / पॉपलर / रोबीनीया / जुनिपर
एग्री–हॉर्टीकल्चर (कृषि फसलें + फलदार पेड़)	गेहूँ / जौ / काला मटर / हरा मटर / गोभी / आलू + सेब / खुमानी / नाशपति / बादाम
सिल्वी–पासचौरल (इमारती एवं ईंधन की लकड़ी वाले पेड़ + चारा घास)	ब्यूँस / पॉपलर / रोबीनीया / जुनिपर + फैसटुका / पैनिसिटम / पोआ / सिटेरीया
एग्री–सिल्वी हॉर्टीकल्चर (कृषि फसलें + इमारती एवं ईंधन की लकड़ी वाली पेड़ + फलदार पेड़)	गेहूँ / जौ / मटर / आलू + ब्यूँस / पॉपलर / रोबीनीया / जुनिपर + सेब / खुमानी / नाशपति

इन सभी समावेशों से इस क्षेत्र के किसान अपने खेत की पैदावार बढ़ाने के साथ अपनी सीमित भूमि से लकड़ी, भोजन, चारा, फल, सब्जियाँ इत्यादि प्राप्त कर सकते हैं जिससे आय में तो

वृद्धि होगी ही इस के अलावा इसके साथ यहाँ के किसानों का सामाजिक-आर्थिक स्तर भी बढ़ेगा। इसके अलावा इस क्षेत्र में पाए जाने वाले महत्वपूर्ण औषधीय पौधे जैसे रतनजोत, कड़ू, सोमलता, छरमा को भी कृषि-वानिकी में समावेश करके लगाया जा सकता है।

लाहौल-स्पिति में कृषि-वानिकी से होने वाले लाभः

- लाहौल-स्पिति एक शीत मरूस्थल ऊँची सफेद पर्वतीय घाटी है जहाँ गर्मियां कुछ महीनों के लिए होती हैं और इस दौरान ही कृषि की जाती है। इस समय में कृषि-वानिकी पद्धति को अपनाकर खाद्यान को इस क्षेत्र में बढ़ाया जा सकता है।
- कृषि-वानिकी में बहुउद्देशीय वृक्षों से ईंधन, चारा, इमारती लकड़ी इत्यादि यहाँ के लोगों की अजीविका में महत्वपूर्ण योगदान देंगी।
- कृषि-वानिकी पद्धति से यहाँ की समाजिक, आर्थिक और पर्यावरण विकास में भी मदद मिलेगी।
- कृषि-वानिकी में जोखिम कम है तथा सूखा पड़ने पर भी बहुउद्देशीय फसलों से कुछ न कुछ उपज प्राप्त हो सकती है।
- कृषि-वानिकी में बहुउद्देशीय वृक्ष प्रजातियों के वृक्ष रोपण करने से भूमि कटान को भी रोका जा सकता है एवं इससे मिट्टी की उपजाऊ क्षमता भी बढ़ाई जा सकती है।
- कृषि-वानिकी से इस क्षेत्र के किसानों को रोजगार और इनकी आय, रहन-सहन में सुधार होगा एवं यहाँ के पर्यावरण एवं पारिस्थितिक संतुलन को बनाए रखने में भी यह मददगार सिद्ध होगी।

निष्कर्ष

जन जातीय क्षेत्र लाहौल-स्पिति के लोगों की आजीविका और पर्यावरण सुरक्षा के लिए कृषि-वानिकी का समावेश आने वाले समय में इस दुर्गम क्षेत्र के विकास के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका अदा करेगा। कृषि, हार्टीकल्चर, सिल्वीकल्चर और पाच्युरल के संयोजन से इस क्षेत्र की उत्पादकता बिना पर्यावरण को नुकसान पहुँचाए बढ़ेगी और किसान कम उपलब्ध कृषि भूमि से भी ज्यादा से ज्यादा उत्पादन ले सकेगा एवं अपनी आय में वृद्धि कर पाएगा। इस क्षेत्र के लिए कृषि-वानिकी प्रणाली समाजिक, आर्थिक एवं पर्यावरण सुधार के लिए उपयोगी साबित होगी।

लाहौल-स्पिति में कृषि-वानिकी (सेब + गेहूँ) का उदाहरण

भारत में स्थानांतरण खेती और अन्य पारंपरिक कृषि प्रणालियों का नवीनतम अनुप्रयोग

स्वाती शेडगे, रविंद्र कुमार ढाका एवं मनमोहन डोबरियाल

उद्यानिकी एवं वानिकी महाविद्यालय, रानी लक्ष्मी बाई केंद्रीय कृषि विश्वविद्यालय

ई-मेल: shedageswati85@gmail.com

सारांश

जलवायु परिवर्तन एवं वैश्विक तापमान के प्रकोप से बचने के लिए आज पूरा विश्व झूझ रहा है साथ ही में इसका असर भारत जैसे कृषि प्रधान देश पर देखने को मिलता है। दूसरी ओर रासायनिक खेती के दुष्परिणाम जैसे शारीरिक बीमारियां, कुपोषण, रोग प्रतिरोधक क्षमता आम बात हो गयी है। वही भारत के लिए वैश्विक खाद्य और पोषण सुरक्षा एक महत्वपूर्ण विषय है। इन सब बातों को मद्देनजर रखते हुए, पूरा विश्व आज आर्गेनिक फार्मिंग और प्राकतिक खेती की वकालत करता है। इसलिए भारत सरकार, आदिम जनजातियों के लिए जो की पारम्परिक एव प्राकतिक रूप से स्थानांतरित खेती को करते आये है, उनके लिए कृषि में उपयोग की जाने वाली भूमि को कृषि भूमि के रूप में परिभाषित करेगी तथा इन किसानों को ऋण और सब्सिडी प्रधान करेगी। स्थानांतरित खेती केवल उपज या अधिक उत्पादन के बारे में नहीं है, बल्कि कई अन्य सह-मौजूदा प्रजातियों के लिए भोजन के अवसर पैदा करते हुए, प्रकृति, मिट्टी और पारिस्थितिकी तंत्र को नुकसान पहुँचाए बिना पौधे उगाना है। इस प्रकार से भारत में आदिम जनजातियों को बहुत महत्त्व दिया जाएगा जो कृषि और वन संबंधी आजीविका स्रोतों पर अत्यधिक निर्भर है।

परिचय

भारत की आदिवासी आबादी कृषि और वन संबंधी आजीविका स्रोतों पर अत्यधिक निर्भर है (डाउन टू अर्थ)। अंडमान के जरावाए, बिहार के बिरहोर जैसी सबसे आदिम आदिवासीयों में आधुनिक कृषि का उनके आर्थिक जीवन में बहुत कम स्थान है। वे परंपरागत रूप से शिकारी और खाद्य संग्रहकर्ता हैं। परंपरागत रूप से कृषि का प्रमुख तरीका आदिवासी लोगों में स्थानांतरित खेती है। वर्तमान में यह नागालैंड और मणिपुर की कई नागा आदिवासीयों और कुकीचिन आदिवासीयों, मिजो पहाड़ियों की लुशाई कुकी आदिवासीयों, आसम के मिकिर और बोडो आदिवासीयों, उड़ीसा के कोंड मध्य प्रदेश और आंध्र प्रदेश में अभुजमार और गोंड में आदिम जनजातियाँ पाई जाती है। कुछ आदिवासी समुदायों में नागालैंड के अगामी और थंकुल नागाए नेफा के अपतानिसए उड़ीसा के सोरस बांध, Terrace) में खेती पारंपरिक रूप से की जाती है। विशेष रूप से मध्य और पश्चिमी भारत में आदिवासी लोगों के बीच बरसाती खेती अधिक नया विकास है। स्थानांतरण खेती द्वारा समर्थित लोगों की संख्या पर किए गए कुछ अध्ययनों से पता चलता है कि यह 0.06 से 0.25 प्रति

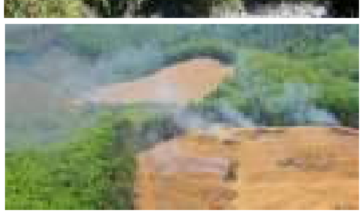

वर्ग किलोमीटर है जबकि पशुपालन के मामले में 0.25 से 0.6 प्रति वर्ग किलोमीटर और आदिम कृषि के मामले में 0.06 से 2.0 प्रति वर्ग किलोमीटर है। संबंधित आबादी को पूर्ण जीविका प्रदान करने के लिए पहाड़ी खेती भी अक्सर अपर्याप्त पाई जाती है। अक्सर यह कृषि वन उपज के संग्रह और आजीविका के अन्य स्रोतों द्वारा पूरक है। बाँध की खेती और बरसाती खेती निर्वाह अर्थव्यवस्था का तकनीकी आधार प्रदान करती है। स्थानांतरी खेती सतत् कृषि प्रणाली है जिसमें अस्थायी समाशोधन वर्षों में कम अवधि के लिए परती रहने की अनुपात की तुलना में काटे जाते हैं। स्थानांतरी खेती से जुड़ी प्रथा क्षेत्र और आदिवासी से आदिवासी में काफी भिन्न होती है। पूर्वोत्तर भारत में, भारत सरकार द्वारा जारी 2018 की एक रिपोर्ट से पता चला है कि 7500 वर्ग किलोमीटर के क्षेत्र का उपयोग अभी भी स्थानांतरण खेती के अभ्यास के लिए किया जा रहा है।

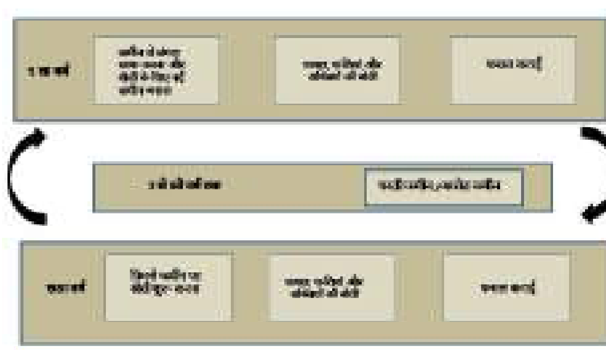

यह विरोधाभाषी है, लेकिन बहुत बार सच है, कि स्थानांतरित खेती ज्यादातर नकदी और वाणिज्यिक गठजोड़ में काफी समय से अस्तित्व में है। उदाहरण के लिए, अनाज और बाजरा के साथ

असम के कई आदिवासी मैदानी इलाकों के व्यापारियों को बिक्री के लिए कपास उगाते हैं। मणिपुर, त्रिपुरा, नागालैंड के शिफ्टिंग किसानों द्वारा उगाई जाने वाली मिर्च और सब्जियां अक्सर बाजार में आती हैं। उड़ीसा के स्थानांतरित किसानों द्वारा अदरक और हल्दी का मैदानी इलाकों में व्यापक बाजार है। यहाँ तक कि NEFA के स्थानांतरित काश्तकारों को भी असम के मैदान को तिब्बत से जोड़कर एक व्यापार चैनल में प्रवेश करके अपनी आजीविका के स्रोतों को पूरा करना होता है।

स्थानांतरण की खेती के दोष

एन.एल. बोर, एफआरआई, देहरादून में वन वनस्पतिशास्त्री ने भारतीय विज्ञान कांग्रेस, 1942 के वनस्पति विज्ञान के अनुभाग में अपने अध्यक्षीय भाषण में असम में मिट्टी के कटाव के कारण को स्थानांतरित खेती के अभ्यास के लिए जिम्मेदार ठहराया। यह अवैज्ञानिक भूमि उपयोग प्रणाली है। स्थानांतरित खेती से वनस्पतियों और जीवों का नुकसान होता है जिसमें पेड़ पौधों, झाड़ियों, औषधीय पौधों और लघु वन उत्पादों की कीमती प्रजातियां शामिल हैं। यह वनों की कटाई का एक आसान तरीका है। जंगली जानवर अपना आश्रय खो देते हैं। नीचे की नदियों में भारी बाढ़ का कारण बनता है। तालाबों, नालों, नदी और जलाशयों में गाद (Siltation) भर जाती है। कटाव की तीव्रता ढलान, मिट्टी की विशेषताओं, फसल कवरेज, मिट्टी की गहराई और वर्षा पैटर्न आदि पर प्रभावित करती है।

स्थानांतरण की खेती नियंत्रित करने के उपाय

भूमि उपयोग के पैटर्न को बदलकर स्थानांतरण की खेती नियंत्रित किया जा सकता है, लेकिन हाल ही में, स्थानांतरित खेती करने वाले किसानों ने झूम खेती के हानिकारक प्रभावों को कम करने के उपाय करना शुरू कर दिया। उदाहरण के लिए, पानी के वेग को कम करने और मिट्टी के कटाव को कम करने के लिए आदिवासि किसान कभी-कभी कटे हुए पेड़ के तने को ढलान पर रख देते हैं। हाल के वर्षों में विस्तार कार्यकर्ता भी वैज्ञानिक झूमिंग को प्रोत्साहित करने की कोशिश कर रहे हैं, आदिवासियों को इसके साथ ही ढलान के पार खांचे बनाने की सलाह देते हैं और साथ ही त्वरित मिट्टी पुनर्जनन और मिट्टी को बाँधने की क्षमता वाली फलीदार और अन्य फसलों को अपनाने की सलाह देते हैं।

टौंग्या खेती, इन हानिकारक प्रभावों को सीमित करने के प्रश्न का एक अन्य दृष्टिकोण है। यह जंगली पेड़ और अस्थायी कृषि का संयोजन है। वास्तव में 1952 की राष्ट्रीय वन नीति में कहा गया है कि झूम खेती की समस्या से निपटने के लिए जहाँ तक संभव हो टौंग्या प्रणाली शुरू की जानी चाहिए।

स्थानांतरण की खेती आधुनिक दृष्टिकोण

इंटरनेशनल फूड पॉलिसी रिसर्च इंस्टीट्यूट (आईएफपीआरआई) में क्षमता सुदृढ़ीकरण के प्रमुख सुरेश बाबू का मानना है कि COVID-19 ने स्थानांतरण खेती को एक नए दृष्टिकोण से देखने की अनुमति दी है, खासकर खाद्य सुरक्षा और कृषि को बढ़ावा देने वाले समुदायों के लिए। वे कहते हैं, ''स्थानांतरण खेती के पारिस्थितिक पहलू सदियों से देशी आबादी द्वारा उगाई जाने वाली स्वदेशी फसलों और किस्मों के संरक्षण के लिए महत्वपूर्ण हैं।'' इसकी विशेषताएं ''जलवायु परिवर्तन और अन्य अनिश्चितताओं को दूर करने के संदर्भ में उपयोगी हैं।'' हालाँकि, इन्हें ''मजबूत संस्थागत समर्थन'' और ''सामूहिक कार्रवाई संस्थानों को उनके बीच पोषित करने की आवश्यकता है।''

हाल ही में, सरकार ने घोषणा की है कि स्थानांतरित खेती को जल्द ही कानूनी समर्थन मिल सकता है। सरकार के थिंक टैंक नीति आयोग (NITI Aayog) के नेतृत्व में एक व्यापक नीति लिखी जा रही है, जिसका उद्देश्य इस प्रथा का समर्थन करना और यह सुनिश्चित करना है कि किसानों को ऋण और सब्सिडी जैसे लाभ मिलें। इस योजना में अनुसूचित जाति के लिए उपयोग की जाने वाली भूमि को कृषि भूमि के रूप में परिभाषित करना शामिल है।

भारत में अन्य पारंपरिक कृषि प्रणालियाँ

स्थानांतरित खेती के अलावा झूमिंग, टौंग्या, बाँध पर खेती आदि कई अन्य पारंपरिक कृषि पद्धतियाँ भारत में मौजूद हैं। होशंगाबाद जिले (मध्य प्रदेश) के धाराव गाँव में आदिवासी किसान खेती की उतेरा प्रणाली का अभ्यास करते हैं। इस मिश्रित कृषि प्रणाली के तहत जून में या उसके आसपास कई अनाज, बाजरा और फलियाँ के बीज एक साथ बोए जाते हैं, इस खेती में बिल्कुल भी नकद खर्च नहीं होता है। ये किसान पिछले साल की फसलों से बीज बचाते हैं। जानवर से मिली खाद खेतो में काम आती हैं जबकि इस जैविक मिश्रित कृषि प्रणाली के फसल अवशेष, पूरी तरह से रासायनिक जहर से मुक्त, बैल, गायों और अन्य खेत जानवरों के लिए पौष्टिक भोजन प्रदान करते हैं। अनाज और फलियों की मिश्रित खेती यह सुनिश्चित करती है कि मिट्टी की उर्वरता बनी रहे। यदि किसी कारण से एक फसल विफल हो जाती है, तो मिश्रित कृषि प्रणाली की अन्य फसलें किसानों को कुछ नुकसान के बावजूद जीवित रहने में सक्षम बनाती हैं।

डिंडोरी जिले (मध्य प्रदेश) में बैगा आदिवासी 'बेंवर' कृषि प्रणाली का अभ्यास करते हैं। गर्मियों की शुरुआत में छोटी झाड़ियों और शाखाओं, गिरे हुए पत्तों को आग में जला दिया जाता है। इसमें राख की पतली परत में मिश्रित बीज बिखरे होते हैं। लगभग तीन

वर्ष बाद खेती का स्थान बदल जाता है। हालांकि कुछ समय के लिए भूमि की मिट्टी को आराम देने के बाद, आदिवासी किसान नौ साल बाद फिर से इस भूमि पर लौट आते हैं। इस 'बेंवर' प्रणाली में जुताई के लिए भूमि की आवश्यकता नहीं होती है। यह प्रणाली इस विश्वास में निहित है कि जुताई करने से धरती माँ को नुकसान पहुँचता है। ट्रैक्टर की तो बात ही नहीं, बैलों की जुताई से भी परहेज किया जाता है। यह बदले में महिला किसानों को बेंवर प्रणाली में बहुत आत्मनिर्भर होने में मदद करता है। आम तौर पर जुताई खेती का एक पहलू है जिस पर पुरुष किसानों का एकाधिकार रहा है। लेकिन बेंवर प्रणाली में जिसमें जुताई शामिल नहीं है, महिला किसानों को पुरुषों पर निर्भर नहीं रहना पड़ता है। इसलिए एकल महिला परिवार भी बेंवर खेती को अपनाने के मामले में काफी आत्मनिर्भर हैं।

ओडिशा के रायगढ और सुंदरगढ़ जिलों में किए गए ''खाद्य उत्पादक आवास के रूप में वन'' नामक एक अध्ययन में हाल ही में ग्रामीणों, मुख्य रूप से आदिवासियों द्वारा 121 विभिन्न प्रकार के गैर-कृषि खाद्य पदार्थों की कटाई की गई। पके हुए खाद्य पदार्थों को तैयार करने के लिए अट्ठानवे विभिन्न प्रकार के कृषि खाद्य पदार्थों का उपयोग किया जाता था। अध्ययन में पाया गया कि वन भोजन सूक्ष्म पोषक तत्वों के मामले में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है। विशेष रूप से तनाव के समय में, बिना खेती वाले खाद्य पदार्थ पोषण का एक महत्वपूर्ण स्रोत होता हैं। यदि जंगल को अच्छी तरह से बनाए रखा जाये तो ऐसे खाद्य पदार्थों की साल भर आपूर्ति होती है। यह भोजन पूरी तरह से मुफ्त है और इसलिए सबसे गरीब लोगों के लिए सुलभ है।

आदिवासियों के बीच कई समस्याएं पारंपरिक ज्ञान की कमी से नहीं पैदा होती हैं बल्कि कई तरफा शोषण और विस्थापन के कारण होती है। उदाहरण के लिए, जब उन्हें अभयारण्य और पार्क क्षेत्रों से बाहर धकेल दिया जाता है, या बाँधों और उद्योगों के लिए रास्ता बनाने के लिए उनकी पूरी रहन-सहन की व्यवस्था ध्वस्त कर दी जाती है।

निष्कर्ष

ये स्वदेशी किसान, कृषि केवल उपज या अधिक उत्पादन के बारे में नहीं है, बल्कि कई अन्य सह-मौजूदा प्रजातियों के लिए भोजन के अवसर पैदा करते हुए, प्रकृति, मिट्टी और पारिस्थितिकी तंत्र को नुकसान पहुँचाए बिना पौधे उगाना है। जब दुनिया जलवायु परिवर्तन के मद्देनजर वैश्विक खाद्य और पोषण सुरक्षा प्राप्त करने के लिए स्थायी और जैविक खेती की वकालत करती है, तो इन स्वदेशी किसानों द्वारा पारम्परिक कृषि पद्धति का अध्ययन और पालन करने के लिए इसे सफलता का मामला बना दिया जाता है। इन आदिवासी किसानों से एक सबक मिलता है, उनका खेती करने का तरीका जलवायु परिवर्तन अनुकूलन क्षमता को मजबूत करेगा और राज्य और नीति निर्माताओं को कृषि संकट से उबरने में मदद करेगा जिसका भारत आज सामना कर रहा है।

वन उत्पाद-वन आश्रित आदिवासियों का कमाई का महत्वपूर्ण जरिया

डॉ. अमेय काले एवं डॉ. मनमोहन डोबरियाल

उद्यानिकी एवं वानिकी महाविद्यालय, रानी लक्ष्मी बाई केंद्रीय कृषि विश्वविद्यालय, झाँसी (उ.प्र.)

ई-मेलः ameyrlbcau.fpu@gmail.com

सारांश

वनों से हमें अनेक मूल्यवान वन उत्पाद प्राप्त होते हैं। सबसे मूल्यवान वन उत्पाद पेड़ों से प्राप्त लकड़ी है और अन्य गैर लकड़ी वन उत्पाद हैं। गैर इमारती लकड़ी वन उत्पादों को फिर से पौधे आधारित लघु वन उत्पादों और पशु आधारित उत्पादों के रूप में वर्गीकृत किया गया है। पौधे आधारित लघु वन उत्पाद, जैसे की पेड़ों की छाल, फल, फूल, जड़, पत्ती, गोंद आदि उत्पाद होते है। पशु आधारित वन उत्पाद यानिकि जानवरों की शिकार कर मिलने वाला माँस, पशुओं की खाल, नाखून, दन्त, शहद आदि उत्पाद भी हमें वनों से मिलते है। इसके अलावा तीसरी श्रेणी है - खनिज आधारित वन उत्पाद जैसे खदान से मिलने वाले पत्थर, विविध खनिज, नदी से मिलने वाली बालू आदि। यदि हम उन जनजातीय लोगों की बात करें जो अपनी आजीविका के लिए वन पर निर्भर हैं, तो वे मुख्य रूप से गैर-लकड़ी वन उत्पादों के संग्रह से गुजरा करते है। पिछले दो दशकों से हमें अधिक महसूस हो रहा है की इन वन उत्पादों में जनजातीय लोगों की आजीविका में सुधार की अपार संभावनाएं हैं। किसानों की आय दोगुनी करने के भारतीय सरकार के उद्देश्य को पूरा करने में, इन वनोपजों का संग्रहण और प्रसंस्करण एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

परिचय

एशियाई क्षेत्र में लगभग 1.73 लाख गाँव है जो जंगलों में और उसके आसपास स्थित है, और 35-50 करोड़ लोग अपनी आजीविका के लिए वन उत्पादों पर निर्भर हैं। भारत की कुल आबादी के, 8.65% आदिवासी हैं और लगभग 50 करोड़ लोग गैर-लकड़ी वन उत्पादों (एन.टी.एफ.पी.) पर निर्भर हैं। कृषि-वानिकी से हमें, गोंद, रेजिन, फ्लॉस, चारा, फाइबर, फल, झाड़ू आदि जैसे कई उत्पाद पेड़ से प्राप्त होते है प्रदान करते हैं। दुनिया भर के कई शोधकर्ताओं ने एनटीएफपी में पेड़ों या जंगलों के महत्व पर प्रकाश डाला है। हालांकि, एनटीएफपी के संग्रह, प्रसंस्करण और विपणन का दस्तावेजीकरण करना आवश्यक है।

इसके सन्दर्भ में एक सर्वे अनुसार, गम, लाख और पत्तल डोना जो पलाश के पेड़ से बनाये या फिर मिलाने वाले उत्पाद तथा खजूर के पेड़ के पत्तों से बनी झाड़ू, महुआ के फूल, बीड़ी पत्ते-इन जैसे उत्पादों से आदिवासी लोग अपना गुजरा करते है। सहरिया आदिवासी समुदाय पलाश के पेड़ से डोना तैयार करके और बाजारों में बेचकर अपने परिवार की आय पूरी करता है। एक दिन में लगभग 2000 कटोरे और लगभग 500-600 रुपये कमाते हैं।

मई के महीने दौरान आदिवासी आमतौर पर बीड़ी लपेटने के लिए तेंदू का उपयोग करते हैं। तेंदूपत्ता तोड़कर लगभग 4.4 मिलियन महिलाए और लगभग 7.5 मिलियन लोगों के लिए 6 सप्ताह का रोजगार उत्पन्न होता है। आदिवासी लोगों के साथ बातचीत से पता चला कि एक व्यक्ति स्थानीय बाजार में बेचकर प्रति दिन 40-80 रुपये कमा सकता है। आदिवासियों को पत्ते के प्रति 100 बंडलों पर 75-100 INR का भुगतान किया जाता है।

खजुर आम भूमि, रेलवे के किनारे, सड़क के किनारे और जलभराव वाले क्षेत्र में उगाया जाने वाला एक पेड़ है। झाड़ू व्यवसाय बुंदेलखंड में बरगुंडा और अन्य वंचित समुदायों के लिए एक आय-सृजन गतिविधि है। यह समुदाय विशेष रूप से झाड़ू तैयार करने के लिए कच्चे माल की तलाश में पलायन करता है। एक व्यक्ति लगभग 25-100 झाड़ू तैयार करता है और त्योहारों के दौरान उनकी माँग होती है, जिसके परिणामस्वरूप 400-4500/- माह का शुद्ध लाभ होता है।

महुआ एक ऐसी पेड़ प्रजाति है, जो शीर्ष पांच एनटीएफपी में से एक है जिसे आदिवासियों द्वारा वरदान माना जाता है। महुआ के फूलों और बीजों के संग्रह से 7.5 लाख आदिवासी लोगों को शामिल करते हुए 90 मानव दिवस का कार्य सृजित किया जा सकता है। शराब बनाने के लिए फूलों को व्यापक रूप से एकत्र किया जाता है। औसतन एक व्यक्ति एक दिन में 10-15 किलो फूल इकट्ठा कर लेता है। फूल 10-20 INR/किग्रा. में बेचे जाते हैं। एक आदिवासी परिवार प्रति सीजन 12000-15000 INR उत्पन्न कर सकता है। फूलों के अलावा, बीज खाद्य तेल का एक

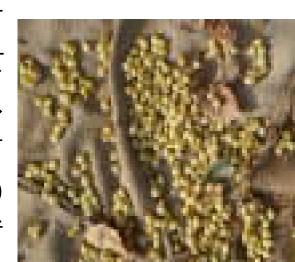

स्रोत हैं। एक मध्यम आयु वर्ग का पेड़ 70-100 किलोग्राम बीज पैदा कर सकता है जिसकी कीमत लगभग 500 रुपये होती है।

बांस-हरा सोना- वर्तमान में सालाना 432 मिलियन कार्यदिवस उत्पन्न करता है, जिसमें लगभग 10 मिलियन लोग कार्यरत हैं। बांस आधारित गतिविधियां 8.6 मिलियन अतिरिक्त रोजगार सृजित करने में सक्षम हैं और

इस प्रकार 5.01 मिलियन परिवारों को अपनी आजीविका बनाए रखने में सक्षम बनाती हैं। बुंदेलखंड क्षेत्र में, स्थानीय रूप से ''लाठी बास'' के रूप में जाना जाने वाला डेंड्रोकलामस स्ट्रिक्टस बुंदेलखंड में बांस की लाठी (छड़ी) तैयार करने के लिए बड़े पैमाने पर उगाया जाता है। 'बांस की लाठियों की बिक्री के माध्यम से 20,000-22,000 रुपये/वर्ष की आय अर्जित कर सकते हैं'। ये लाठियाँ स्थानीय लोगों द्वारा सुरक्षा और सहायता के लिए खरीदी जाती हैं।

बुंदेलखंड क्षेत्र में आदिवासी समुदाय नवंबर से दिसंबर के दौरान पलाश के पेड़ को काटता है और एक पेड़ से 300 ग्राम गोंद एकत्र करता है। एक सीजन में, एक परिवार लगभग 100-120 किलोग्राम एकत्र करता है और लगभग 8000-12000 रुपये/वर्ष कमाता है। लाख के उत्पादन से भी आदिवासी अपनी आजीविका कर सकते है। पलाश के पेड़ नए पत्ते लाख कीट से संक्रमित किये जाते है, जिससे लाख की रंगीनी नस्ल पैदा होती है। 5 महीने की अवधि के भीतर, किसान एक अच्छी तरह से परिपक्व पेड़ से प्रति पेड़ 1200-1500 रुपये की वार्षिक आय के साथ लगभग 1.5-2 किलो ग्राम लाख कमा सकते हैं।

निष्कर्ष

एन.टी.एफ.पी. आदिवासी समुदायों की रीढ़ हैं क्योंकि वे आजीविका का एक प्रमुख स्रोत हैं। हालांकि, बाजार असंगठित है और निचले स्तर पर इसका शोषण किया जाता है। इसके अलावा, ग्राम स्तर पर एकत्रीकरण, मध्यवर्ती प्रसंस्करण/भंडारण और एनटीएफपी की बिक्री का अभाव है। इसलिए, सभी हितधारकों की सामूहिक जिम्मेदारी होनी चाहिए कि वे एनटीएफपी संग्रहकर्ताओं के आजीविका विकल्पों का समर्थन करें और भविष्य को सुरक्षित करें।

बुंदेलखंड क्षेत्र के बहुमूल्य वन संसाधन एवं उसमें रोजगार के अवसर

डॉ. मुहम्मद नासिर

वन उत्पाद उपयोग कॉलेज ऑफ फॉरेस्ट्री बाँदा कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, बाँदा

ई-मेलः mnknasir@gmail.com

बुंदेलखंड भारत के सबसे गरीब क्षेत्रों में से एक है जहाँ अधिकांश कृषि क्षेत्र सूखे से प्रभावित है, जिस कारण यहाँ लोग भोजन और आजीविका की तलाश में शहरों की ओर पलायन करने के लिए मजबूर है। भारत की जनगणना के अनुसार, बुंदेलखंड की कुल आबादी 183 लाख है, जोकि उ.प्र. और म.प्र. दो भाग में विभाजित है। यहाँ की कुल जनसँख्या में एक बड़ी संख्या में जनजातीय समुदायों जैसे बियार, कोल, भैनी, सहरिया, बेदिया और खजूरवंशी आदि की है जो मुख्य रूप से अपनी आजीविका के लिए जंगल पर ही निर्भर रहते हैं। बुंदेलखंड का अधिकांश वन क्षेत्र उष्णकटिबंधीय शुष्क पर्णपाती और कांटेदार जंगल के अंतर्गत आता है। बुंदेलखंड का कुल वन क्षेत्र 1.24 मिलियन हेक्टेयर है, जो कुल भौगोलिक क्षेत्र का लगभग 17.62% है। इस क्षेत्र के वन उपजो में व्यापक विविधता है जैसे सागौन और शीशम जैसे मूल्यवान व्यावसायिक वृक्ष (इमारती लकड़ी) है तो दूसरी तरफ बबूल और विलायती बबूल (प्रोसोपिस) जैसी उत्कृष्ट ईंधन की लकड़ी भी बहुताय में है। गैर-लकड़ी वन उपज (एन टी एफ पी) के रूप में विभिन्न औषधीय महत्व की 350 से अधिक प्रजातियां पायी जाती है, जिनमें से 82 प्रजातियों का उपयोग पारंपरिक रूप से आय सृजन के लिए किया जाता है। इसके अतिरिक्त बुंदेलखंड के प्राकृतिक वन क्षेत्रों में वृक्षो से प्राप्त होने वाले उपज जैसे महुआ, चिरौंजी, तेंदू और गोंद प्रजातियां भी प्रचुर मात्रा में पाए जाते है। भारत में जंगल की कटाई प्रतिबंधित होने के कारण कई संभाग में एनटीएफपी से प्राप्त होने वाला राजस्व, लकड़ी से अधिक होता है। इस दृष्टि से बुंदेलखंड में होने वाले इन प्राकृतिक संसाधनों के कारण इस क्षेत्र में वन उपज तथा इससे सम्बंधित आजीविका के अपार संभावनाएं हैं।

बुंदेलखंड के महत्वपूर्ण बहुउद्देशीय पेड़

1. बुटिया *(बुटीया मोनोस्पर्मा)*

यह पलाश या छेओल के नाम से जाने जाना वाला मूलतया मध्य भारत का वृक्ष है, जो विभिन्न एनटीएफपी का एक स्रोत है जैसे गोंद, पानी में घुलनशील डाई, लाख राल, चारा, थाली के लिए पत्ते, आदि। किसानों और आदिवासियों की आजीविका सुरक्षा में इस प्रजाति के संभावित योगदान को ध्यान में रखते हुए, भा.कृ.अ.नु.प.-के कृ.वा.शो.सं., झाँसी ने लाख और गोंद के उत्पादन के लिए पलाश आधारित कृषि वानिकी प्रणाली विकसित की। बुंदेलखंड में पलॉश का महत्व निम्न रूप में है।

अ) पलॉश छाल से गोंद निकाला जाता है जिसका स्थानीय बाजारो में बहुत मांग है। बुंदेलखंड की सहरिया जनजातीय पलाश के पेड़ों से नवम्बर-दिसम्बर के दौरान गोंद उत्पादन का कार्य करते है। औसतन, 300 ग्राम गोंद एक पेड़ से एकत्र किया जाता है और 4-5 व्यक्तियों का परिवार एक वर्ष में लगभग 100 किलोग्राम गोंद एकत्र कर सकता है। यह गोंद बिचौलियों द्वारा 80 रुपये/किग्रा की दर से खरीदा जाता है जो की अंततः साफ करने के बाद, बाजार में 400-500 रुपये प्रति किलो बिकता है।

ब) पलाश के पत्तो से डोना पत्तल बनाने का कार्य पारम्परिक रूप से यहाँ के स्थानीय लोगो द्वारा किया जाता है जो उत्तरी भारत के ग्रामीण बाजार में बहुत ही लोकप्रिय है। 4-5 लोगों का एक परिवार एक दिन में लगभग 2000 कटोरे तक बना लेते हैं और ये 50 कटोरे के प्रत्येक बंडल लगभग 12 रुपये बिकते हैं। इस तरह पूरा परिवार प्रतिदिन 450-500 रुपये की आजीविका के लिए पूरी तरह से पलाश के पेड़ों पर निर्भर है। वर्तमान के सन्दर्भ में प्लास्टिक के कटोरे के उपयोग को कम करने के लिए डोना पत्तल के लिए पलॉश का प्रचार पर्यावरण की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है।

ब) पलाश पर लाख की खेती हमारे देश की प्राकृतिक विरासत है जो की मुख्यतः आदिवासियों और ग्रामीण से साथ जुड़ा हुआ है। भारत में, तीन मुख्य लाख मेजबान पेड़, जोकि कुसुम (*schleichera oleosa*), पलाश बूटी मोनोस्पर्मा (*Butea monosperma*) और बेर (*ziziphus spp*) है जिनपर लगभग 90 लाख का उत्पादन होता है। जिसमे रंगनी प्रजाति मुख्य रूप से पलाश के पेड़ों पर ही अच्छी तरह से उगती है। लाख के पैदावार में लगभग 4-5 महीने बाद अक्टूबर से नवंबर में काटी जाती है। पलाश के एक पेड़ से 1.5-2.5 किलोग्राम लाख का उत्पादन हो सकता है जिससे 700-800 रुपये की वार्षिक आय होती है।

2. खजूर वृक्ष (*Phoenix sylvestris*)

अ) बुंदेलखंड में जंगली खजूर बहुताय में पाए जाते हैं। इसका उपयोग झाडू बनाने के साथ-साथ कई अन्य उपयोग है जैसे खाद्य फल, ताड़ी या नीरा के लिए दोहन, रस से गुड़, घरों

के निर्माण में सहायक बीम के रूप में तने का और टोकरी, पंखे, फर्श की चटाई आदि बनाने के लिए पत्ते। मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, छत्तीसगढ़ आदि के ग्रामीण क्षेत्रों में खजूर के पत्ते आम हैं। बरगुंडास समुदाय के आदिवासी पारंपरिक रूप से खजूर के झाड़ू बनाने का काम करते है। एक परिवार खजूर के पत्तो की उपलब्धता के आधार पर प्रतिदिन लगभग 25-100 झाड़ू तैयार कर सकता है जोकि 10-15 रूपये प्रति झाड़ू बिक जाता है।

ब) बुंदेलखंड के महोबा जिले में खजूर के पेड़ पैर लगे पुष्पक्रम के पास से रस इकट्ठा किया जाता है, जिसका उपयोग गुड़ तैयार करने के लिए किया जाता है। यह गुड़ लगभग 300 रुपये प्रति दिन तक लाभ दे सकता है।

स) चित्रकूट में दूल्हे के लिए ताज तैयार करने के लिए खजूर के नए उभरे हुए सुनहरे-पीले रंग के पत्तों का भी उपयोग किया जाता है जोकि 800-1000 रुपये प्रति पीस बेचा जा सकता है।

3. महुआ (*Madhuca indica*)

महुआ का फूल देश में शीर्ष पांच लघु वन उत्पादों में से एक है, और मध्य भारत के आदिवासी समुदायों को इसे एकत्र करने और बेचने की अनुमति प्रशासन से प्राप्त है। महुआ में मार्च-अप्रैल के दौरान फूल तैयार होता है, जिन्हें घरेलू खपत और शराब बनाने के लिए व्यापक रूप से एकत्र किया जाता है, साथ ही महुआ के बीज से दवा और खाद्य तेल का भी उत्पादन किया जाता हैं।

अ) एक औसत आकार का पेड़ एक महीने में लगभग 50-100 किलोग्राम फूल देता है। महुआ फूल संग्रहण की प्रभावी अवधि केवल 22-27 दिन होता है। 4-5 लोगों का एक परिवार एक अच्छे वर्ष में लगभग 1 टन तक सूखे महुआ के फूल एकत्र कर सकता है, जो की 10-20 रुपये प्रति किलो बिक जाते हैं। ललितपुर में वन विभाग के अनुसार, वन क्षेत्र आदिवासी आबादी के 70% को आजीविका प्रदान करता है और अकेले ललितपुर डिवीजन हर साल लगभग 500 टन तक सूखा महुआ एकत्र कराता है; हालांकि, कोई स्पष्ट रिकार्ड उपलब्ध नहीं हैं।

ब) फूलों के मौसम के बाद, आदिवासी महुआ के बीज एकत्र करते हैं जिससे भी आय प्राप्त की जा सकता है। औसतन मध्यम आयु वर्ग के पेड़ 70-100 किलोग्राम बीज पैदा कर सकते हैं, जिससे लगभग 500 रुपये मिलते हैं।

स) भारत के कुछ हिस्सों में लोग महुआ के पेड़ की पूजा करते हैं क्योंकि यह गरीब लोगों को भोजन प्रदान करता है।

4. तेंदू (*Diospyros melanoylon*)

तेंदू का पेड़ पूरे मध्य भारत में व्यापक रूप से पाया जाता है, जिसकी पत्तियों का उपयोग मुख्यतः बीड़ी लपेटने के लिए किया जाता है। आय की दृष्टि से बुंदेलखंड में तेंदूपत्ता सबसे महत्वपूर्ण वनोपज है और इनका संग्रहण व बिक्री उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश में राज्य इकाईयों द्वारा किया जाता है। तेन्दु पत्ता एकत्र एक श्रम युक्त कार्य है, जो ग्रीष्म माह में जब रोजगार के अवसर काम होते है लाखों आदिवासियों को रोजगार देता है। इस कार्य का आरम्भ मध्य अप्रैल में तेन्दु के परिपक्व पत्तियों को एकत्र करने से आरम्भ हो कर अगले छह सप्ताह पत्तों को सुखाने के लिए किया जाता है। बुंदेलखंड क्षेत्र में आदिवासी समुदाय का पूरा परिवार तेंदूपत्ता संग्रहण का कार्य करता है, जिन्हें पत्तों के बंडलों की संख्या के अनुसार मजदूरी मिलती है। अखिल भारतीय बीड़ी उद्योग महासंघ के अनुसार, देश में हर साल लगभग 550 बिलियन बीड़ी बेची जाती है। बुंदेलखंड क्षेत्रों, यू.पी. और एम.पी. के सूखा प्रभावित जिलों में, तेंदू की खेती और आदिवासी समुदायों को रोजगार के साथ-साथ राजस्व उत्पन्न करने की क्षमता है। वन विभाग आदिवासियों को पत्ते के 75-100/100 बंडल का भुगतान करता है। झाँसी वन प्रभाग के अनुसार, एक व्यक्ति स्थानीय बाजार में तेंदूपत्ता बेचकर प्रति दिन 40-80 रुपये कमा सकता है। तेंदूपत्ता तोड़ने से लगभग 75 लाख लोगों को लगभग छह सप्ताह का रोजगार मिलता है, जबकि बीड़ी के रोलिंग से लगभग 44 लाख महिलाओं और बच्चों को रोजगार मिलता है।

5. बांस (*Dendrocalamus strictus*)

बांस एक बहुउद्देशीय वृक्ष है जो पोएसी कुल में आता है। यह दुनिया भर में लगभग 370 लाख हेक्टेयर क्षेत्र में उगाया जाता है, जिसमें 1200 से अधिक प्रजातियां शामिल हैं। विश्व के 1200 प्रजातियों में से भारत में बांस की की कुल 136 प्रजातियां पाई जाती हैं, जोकि चीन के बाद दुनिया में दूसरे नंबर पर हैं। राष्ट्रीय बांस मिशन (एनबीएम) के एक अनुमान के अनुसार, भारत में बांस का कुल स्टॉक 80.43 मीट्रिक टन (मीट्रिक टन) है जो 13.96 मीटर हेक्टेयर क्षेत्र में है। भारत में, बांस आधारित उद्योग में वर्तमान में 432 मिलियन कार्य-दिवस प्रतिवर्ष उत्पन्न होता है, जिसमें लगभग 10 मिलियन लोग कार्यरत हैं।

बुंदेलखंड क्षेत्र में, *डेंड्रोकालमुस स्ट्रिक्टस* (नर बांस), जिसे स्थानीय भाषा में लाठी बांस कहा जाता है, जो जंगलों के साथ-साथ कृषि क्षेत्रों में बड़े पैमाने पर उगाया जाता है। बुंदेलखंड के लोग छोटी बड़ी आवश्यकताओं के लिए लकड़ी की जगह बांस पर ही निर्भर रहते हैं, जैसे छप्पर घर, मिटटी का घर, पुलिया, मचान, चारपाई, बाड़ लगाना, टोकरी, कृषि उपकरण, लाठी इत्यादि। इस

समय बुंदेलखंड के विभिन्न शहरो में बांस मंडी में एक परिपक्क बांस के 20-25 फुट की कीमत 100-120 रूपये प्रति बांस है। इसके अतीरिक्त अगर एक छोटे आकर के बांस से आकर्षक एवं सुंदर रंग की लाठिया बना कर बेचीं जाये तो 160-175 रुपये तक मूल्य प्राप्त किया जा सकता है। केवल बांस की लाठियों की बिक्री से व्यक्ति 20,000-22,000 रुपये प्रति वर्ष की मामूली आय अर्जित कर सकता है। इन लाठियों का उपयोग सुरक्षा के लिए, समर्थन के रूप में, किसानों द्वारा जंगलों के साथ-साथ कृषि क्षेत्रों में चारे और ईंधन लकड़ी के पेड़ों को काटने के लिए कुल्हाड़ी के रूप में किया जाता है। बुंदेलखंड के झाँसी, हमीरपुर, महोबा और बाँदा जिलों में बांस की छड़ी का कारोबार मुख्य रूप से प्रचलित है, जो गाँव के मेलों और त्योहारों में बेचा जाता है।

एनटीएफपी में आजीविका की संभावना

बुंदेलखंड क्षेत्र के किसानों, आदिवासियों और भूमिहीन मजदूरों द्वारा एनटीएफपी का उपयोग जीवन यापन के लिए हमशा से किया जाता रहा है। एनटीएफपी आदिवासी समुदायों की रीढ़ की हड्डी की तरह उनकी आजीविका का प्रमुख स्रोत हैं। यह बुंदेलखंड क्षेत्र में कृषि के बाद दूसरा सबसे बड़ा रोजगार की क्षमता रखता है। एनटीएफपी व्यवसाय एक अक्षय और विश्वसनीय स्रोत है, लेकिन असंगठित बाजार, गोदामों का आभाव, काम मूल्य एवं मजदूरी, प्रसंस्करण का आभाव इत्यादि बाधाओं के कारण इसका व्यवसायीकरण नहीं हो पा रहा है। बुंदेलखंड क्षेत्र में एनटीएफपी के नाम पैर केवल महुआ, तेन्दु, खजूर और बांस का ही व्यापार, संग्रह एवं प्रसंस्करण हो रहा है। जबकि, बुन्देलखंड में पाए जाने वाले औषधीय पौधों तथा इनकी उपयोगिता का ज्ञान बहुत ही व्यापक है जिसका प्रचार एवं प्रसार होना बाकी है। एक अनुमान में पाया गया कि भारत में कई ग्राम समुदायों की वार्षिक घरेलू आय का 17-35% भाग मुख्य रूप से एनटीएफपी से प्राप्त होता है, जबकि ओडिशा में यह 40% तक है। बुंदेलखंड क्षेत्र में लोग एनटीएफपी के लिए मुख्य रूप से पाँच पेड़ प्रजातियों पर ही निर्भर हैं, जबकि अन्य क्षत्र जैसे सेमल का फाइबर, पलाश से गुलाल रंग, वन औषधीय, खिलौना व्यवसाय इत्यादि में भी व्यवसाय के असीम सम्भावनाएं है। वर्तमान अध्ययन में देखा गया है कि पेड़ों से होने वाली आमदनी कम होती है और मेहनत ज्यादा होती है जबकि एनटीएफपी से पुरे वर्ष 15,000 से 50,000 रूपया तक प्रतिवर्ष कमाया जा सकता है। इसके लिए बुंदेलखंड क्षेत्र में उन्नत प्रसंस्करण तकनीक, बाजार निर्माण तथा व्यापक प्रशिक्षण एवं जागरूकता कि आवशयकता है। इसके अतिरिक्त एनटीएफपी संग्रहकर्त्ताओं के आजीविका एवं विकल्पों का समर्थन करने के लिए सरकारी संगठन, गैर सरकारी संगठन और स्वयं सहायता समूह सहित सभी को सामूहिक हित के साथ कार्य करना होगा।

लेह-लद्दाख क्षेत्रों में खुबानी की खेती

रोहित कुमार[1], डेस्कयोंग नामग्याल[1], डॉ आनंद कुमार कटियार[2] एवं डॉ सेरिंग स्तोबदन[3]

[1]तकनीकि अधिकारी 'ए', [2]वैज्ञानिक 'ई', [3]वैज्ञानिक 'एफ'

रक्षा उच्च तुंगता अनुसंधान संस्थान, लेह-लद्दाख

ई-मेलः rohit.dihar@gov.in

सारांश

लद्दाख हिमालयन श्रृंखला में स्थित एक दुर्गम क्षेत्र है। जिसके दो मुख्य जिले हैं लेह एवं कारगिल। यह समुन्दरतल से लगभग 2900 मीटर से 5900 मीटर तक की ऊँचाई में फैला हुआ है। अधिक ऊँचाई पे होने के कारण यहाँ की जलवायु विपरीत है जिसमे कम वायुदाब, कम अद्रता, तेज हवा, व पराबैंगिनी किरणों की अधिक मात्रा बनी रहती है। सर्दियों में अधिकतम तापमान -30 डिग्री तक चला जाता है। कठोर एवं लंबे अंतराल तक रहने वाली सर्दियों के कारण खेती के लिए 4 से 5 महीने का ही समय मिल पता है। जिस कारणवश ठण्ड में फलों एवं सब्जियों की उपलब्धता कम हो जाती है। लद्दाख क्षेत्र में प्राकृतिक रूप से पाये जाने वाले फलों में खुबानी (चूली-स्थानीय भाषा में) सबसे किफायती ओर अधिक माँग वाला फल है।

परिचयः

खुबानी एक गुठलीदार फल है। यह 'प्रूनस' परिवार (आलू बुखारा, आडू, नाशपाती) के फल है। विश्व में सबसे अधिक खुबानी तुर्की में उगाई जाती है। भारत में यह फल तराई राज्यों जैसे उत्तराखंड, हिमाचल प्रदेश और लेह लद्दाख क्षेत्रों में पाया जाता है। यह समान्यतः ऊँचाई के क्षेत्रों में अधिक होता है। लद्दाख में यह 'चूली' नाम से व सुखाई हुई खुरबानी 'फटिंग' नाम से स्थानीय भाषा में प्रचलित है।

खुबानी के फल पीले, नारंगी, गुलाबी भूरे रंग के ज्यादातर होते हैं। इन फलों में पाया जाने वाला बीज बादाम की तरह होता है। जो समान्यतया फलों की किस्मों के अनुरूप कडवे या मीठे होते है। खुबानी के बीजो से तेल निकाला जाता है व सौन्दर्य उत्पादों में ज्यादातर इस्तेमाल किया जाता है।

रकसे कार्पो किस्म की ताजा खुबानी

खुबानी के व्यसक पेड़

भारत में लगभग 22 प्रतिशत खुबानी का उत्पादन लद्दाख में होता है। जिसमे लेह में तकरीबन 5150 टन, कारगिल में 10252 टन के आस पास उत्पादन होता है। उत्तम किस्म की शुष्क खुबानी (फटिंग) शर्करा व शुष्क पदार्थ की अधिक मात्रा होने की वजह से यहाँ की सबसे मुख्य व्यापार में लायी जाने वाली वस्तु है। अधिकतर खुबानी स्थानीय तौर पे खाने के लिए इस्तेमाल की जाती है तथा ताजा खुबानी, शुष्क खुबानी के बीज, तेल के रूप में बेची जाती है।

पौध रोपण का समयः

पौधों की रूपाई जनवरी से जुलाई तक की जाती है। लद्दाख क्षेत्र में फरवरी-मार्च इसके लिए उत्तम समय व जुलाई के अंत तक फल देने वाले पौधों से तुड़ाई शुरू हो जाती है।

उपयुक्त मिट्टी, जलवायु एवं तापमानः

खुबानी की की खेती के लिए जल निकासी वाली गहरी उपजाऊ दोमट मिट्टी की आवश्यकता होती है, परंतु लद्दाख की जल निकासी वाली रेतीली मिट्टी भी इस फल के लिए उपजाऊ है। भूमि का पी एच मान 7 के आस पास होना चाहिए। खुबानी की खेती के लिए सामान्य तापमान सबसे उत्तम माना जाता है। लेकिन 5 डिग्री से कम तापमान होने पे इस पौधे के फूल खराब हो सकते है। बेहतर विकास के लिए 15 से 30 डिग्री तापमान सबसे उत्तम है।

फलों की उत्तम किस्मेः

रकसे कार्पो (सफेद गुठलीदार बीज सहित)ः खुबानी की यह विश्व में पाये जाने वाली सबसे अधिक, मीठी व विशिष्ट किस्म है। जो केवल लेह लद्दाख के ऊँचाई के क्षेत्रों में उपलब्ध है। इसका औसतन टी एस एस 28 डिग्री. ब्रीक्स से आसपास है। इस फल की गुठली की उपरी परत सफेद रंग की होती है व बीज मीठे होते हैं। शोध के अनुसार ऊँचाई के साथ-साथ इसकी मिठास ओर अधिक बढ़ जाती है। यह उपभोगताओं की मिठास, जूस की मात्रा, खुशबू, रंग जैसी विशेषताओ की वजह से प्रथम पसंद है। रकसे कार्पो में सोर्बिटोल शुगर (कार्बोहाइड्रेट) की सबसे अधिक मात्रा है

(53.2 ± 22.5 मि.ग्रा./ग्राम शुष्क भार)। जो कि डाईबिटीज के लिए फायदेमंद है।

हाल्मनः यह किस्म सुखी खुबानी के लिए उत्तम मानी जाती है। लद्दाख के क्षेत्रीय लोग पारंपरिक तरीकों से सूर्य की रोशनी में इन्हे सुखाकर बाजार में बेच के अच्छी आमदनी कमाते है। यहाँ आने वाले पर्यटको की संसाधित खाद्य उत्पादों की भारी मांग रहती है।

खाण्टेः यह खुबानी की एक खट्टी किस्म है। इसके बीज भी स्वाद में कडवे होते हैं। खाण्टे किस्मों के बीजों को ज्यादातर तेल उत्पादों में इस्तेमाल किया जाता है।

खेतो एवं नर्सरी की तैयारी

खुबानी के पोधों को खेत में गड्ढे कर लगाया जाता है। भूमि को समतल बनाने के बाद उसमे गड्ढे तैयार किए जाते हैं। इन गड्ढों को पंक्तियों में तैयार किया जाता है। प्रत्येक गड्ढे के बीच में 5 से 2 मी. की जगह होनी चाहिए व प्रत्येक पंक्ति के बीच मे 5 मी. तक की दूरी होनी चाहिए। खुबानी के पौधों की रोपाई कलम तैयार कर की जाती है। इसकी कलम बीज, ग्राफ्टिंग, कलम दाव ओर गूटी बांधने की विधि से तैयार की जाती है।

फलों की तुड़ाईः

लद्दाख क्षेत्र के खुबानी फल विश्व में अन्य जगह पाये जाने वाले खुबानी फलो की अपेक्षा देरी से पकते हैं। फलो को मध्य जुलाई से सितम्बर के पहले सप्ताह के भीतर तोड़ लिया जाता है। ऊँचाई बढ़ने के साथ की फलों के पकने में अंतर देखा जा सकता है। खुबानी का पौधा 3 से 4 साल में फल देना शुरू कर देता है। इसके पौधे में फलन अप्रैल माह में शुरू होता है। इसके फल पूर्ण रूप से पकने से पहले ही तोड़ ले ताकि फलों को दूर बाजार तक भेजा जा सके। इसके पके हुए फल अलग-अलग किस्मों के आधार पर अलग रंग के दिखाई देते हैं। इसके नर्म फलों को तोड़कर गुणवत्ता के आधार पर छँटाई कर बाजार में बेच देना चाहिए।

फलों का पारम्परिक तरीको से प्रसंस्करण एवं भंडारणः

वर्तमान समय में सबसे उत्तम खुबानी फल अधिकतर हल्के गर्म विशिष्ट रूप से कम ऊँचाई के स्थानों जैसे की कारगिल, बटालिक, हानु घाटी, नुबरा घाटी इत्यादि में पाये जाते है। तोड़े हुए फलों की गुणवत्ता बनाए रखने के टोकरी में रखा जाता है, स्थानीय भाषा में इसे 'च्यपो' केएचए जाता है। धूप में सुखाने के लिए फलों को सेलिक्स से बने पत्रक में बिछाया जाता है, जिसे 'शाक' कहा जाता है। उत्तम किस्म की खुबानी जिनके बीज मीठे व पोषक तत्व की मात्रा अधिक होती है को 10-12 दिन के लिए सुखाया जाता है। सिकुड़े ओर कठोर फलों को जूट के बैग में इकट्ठा कर सर्दियों के लिए लकड़ी के बक्सों में भंडारण किया जाता है ओर कम गुणवत्ता के बीजों का सीधे तेल निष्कासन के लिए इस्तेमाल कर लिया जाता है।

धूप में खुबानी सुखाने की प्रक्रिया

सोलर ड्रायर द्वारा सुखाने की विधि

तकनीकी में बदलाव आने के बाद अब सोलर ड्रायर द्वारा सुखाने की विधि इस्तेमाल की जा रही है। यह उपकरण तापमान व आर्द्रता की उचित मात्रा उपलब्ध कर खुबानी को सुखाकर प्रयोग में लाते है। सोलर ड्रायर द्वारा प्राप्त खुबानी अधिक स्वास्थ्यकर होती है।

तेल निष्कासन के लिए फलों की गुठली की परत को अलग कर 8-10 दिन तक धूप में सुखाया जाता है। सर्दियों में शुष्क खुबानी की परत को पशुओं के चारे के रूप में इस्तेमाल कर लिया जाता है हालांकि मीठे बीज सहित खोल को निर्यात भी किया जाता है। खुबानी तेल को स्थानीय भाषा में 'चूलीमार' अथवा 'सुगिमार' भी कहा जाता है जिसे कई प्रकार से उत्पादों में इस्तेमाल किया जाता है व बाजार में इसकी कीमत लगभग 800-900 रूपये प्रति किलोग्राम है। यह त्वचा पे बहुत आसानी से अवशोषित हो जाता है। खुबानी के तेल का क्रीम, बेबी लोशन, बॉम, साबून इत्यादि बनाने में इस्तेमाल किया जाता है। खुबानी तेल को पारंपरिक तौर से कोल्ड प्रेस विधि द्वारा निकाला जाता है। जिसमे बाहरी तापमान न देकर 25-27 डिग्री तापमान के नियंत्रण पर तेल को निकाला जाता है। जिससे तेल की औषधीय गुणवत्ता बनी रहती है।

पैदावार एवं अतिरिक्त लाभ

खुबानी के पेड़ एक बार फल लगने के बाद लगभग 50 से 20 वर्ष तक पैदावार देते हैं। एक वृक्ष से औसतन 70-80 किलोग्राम फल प्राप्त होते है। किस्मों के हिसाब से लेह लद्दाख में 100 रूपये से लेके 450 रूपये तक ताजा खुबानी व शुष्क खुबानी के 200 से 800 रूपये किलोग्राम तक के भाव मिल जाते हैं। खुबानी से निर्मित संसाधित खाद्य पदार्थों जैसे तेल जूस इत्यादि भी किसानों के आय के उत्तम स्रोत है।

खुबानी प्रसंस्करण

ताजा खुबानीः खुबानी के ताजे फल सड़न, खनिज तेल और रंगों के तेल से मुक्त होने चाहिए। इसका तुरंत सेवन किया जाना चाहिए व कम अवधि के लिए प्रसंस्कृत स्थिति में संग्रहीत किया जाना चाहिए। सर्वप्रथम ग्रेडर का इस्तेमाल कर छटाई कर लेनी चाहिए व सैनिटेशन मशीन का प्रयोग कर थरमोकल ट्रे या पुनेट ट्रे में लेबलिंग कर भंडारण कर लेना चाहिए ।

निर्जलित खुबानीः यह कैबिनेट/सौर/निर्वात निर्जलीकरण के उपयोग के माध्यम से खुबानी के लिए महत्वपूर्ण संरक्षण प्रक्रियाओं में से एक है जहाँ वांच्छित उत्पाद प्राप्त करने के लिए सटीक समय, तापमान ओर गर्म हवा की गति को नियंत्रित किया जाता है। इस प्रक्रिया में ग्रेडिंग व सैनिटेशन मशीन का उपयोग करने के पश्चात् सतह की नमी दूर करने के लिए कनवेयर एयर ड्रायर का इस्तेमाल किया जाता है। इसके बाद बीज निकालकर सल्फरडाइऑक्साइड सतत ब्लांचिंग करके, कैबिनेट/सौर/निर्बात निर्जलीकरण का इस्तेमामल कर पुनेट ट्रे में पैकिंग, लेबलिंग कर भंडारण किया जाता है।

खुबानी जूस/आरटीएस पेयः यह परिपक्व फल के गुददे से तैयार किया जाता है। ग्रेडिंग, सतह की नमी दूर करने जैसी प्रक्रियाओं के पश्चात् हेलिकोइडल जूस ऐक्सट्रेक्टर का उपयोग करके जूस निकाल जाता है। उसमे ब्रीक्स और अमल के स्तर को समायोजित कर एकरूपता व पास्तेरीकरण से जूस बनाया जाता है।

निष्कर्ष

खुबानी (प्रून्स अर्मेनिका) भारत के मध्य पहाड़ी और शुष्क समशीतोषण क्षेत्रो की एक महत्वपूर्ण फसल है। यह अल्प शेल्फ जीवन के साथ एक अतिशिग्रह खराब होने वाला फल है जो की वाणिजीयक पकने से लेकर जीर्णता जैसी गिरावट प्रक्रिया तक की कम समय अवधि के कारण होता है। खुबानी के फल भारत के ट्रांस-हिमालयी लेह लद्दाख क्षेत्र में उगाये जाते हैं। जिसका कुल उत्पादन लेह में तकरीबन 5150 टन, कारगिल में 10252 टन के आसपास होता है, जो देश के खुबानी उत्पादन का लगभग 22% है। लद्दाख में यह 'चूली' नाम से व सुखाई हुई खुरबानी 'फटिंग' नाम से स्थानीय भाषा में प्रचलित है। उत्तम किस्म की शुष्क खुबानी (फटिंग) शर्करा व शुष्क पदार्थ की अधिक मात्रा होने की वजह से यहाँ की सबसे मुख्य व्यापार में लायी जाने वाली वस्तु है। अधिकतर खुबानी स्थानीय तौर पे खाने के लिए इस्तेमाल की जाती है तथा ताजा खुबानी, शुष्क, खुबानी के बीज, तेल के रूप में बेची जाती है। रकसे कार्पो खुबानी की अधिक, मीठी व विशिष्ट किस्म है। जो केवल लेह लद्दाख के ऊंचाई के क्षेत्रों में उपलव्ध है। रकसे कार्पो में सोर्बिटोल शुगर (कार्बोहाइड्रेट) की सबसे अधिक मात्रा है (53.2 + 22.5 मि.ग्रा. शुष्क भार)। जो कि डाईबेटेज के लिए फायदेमंद है। हाल्मन किस्म शुष्क खुबानी के लिए उत्तम मानी जाती है। पारंपरिक तौर से गुणवत्ता बनाए रखने के लिए फलों को टोकरी में रखा जाता है, स्थानीय भाषा में इसे 'च्यपो' कहा जाता है। धूप में सुखाने के लिए फलों को सेलिक्स से बने पत्रक में बिछाया जाता है, जिसे 'शाक' कहा जाता है। उत्तम किस्म की खुबानी जिनके बीज मीठे व पोषक तत्व की मात्रा अधिक होती है को 10-12 दिन के लिए सुखाया जाता है। तकनीकी विकास के साथ साथ प्रसंस्करण के लिए मशीनों से खाद्य पदार्थ संस्करण तैयार कर बाजार में पर्यटकों को लुभाकर किसानों की आमदनी को बढ़ाया जा रहा है। निश्चित तौर पे खुबानी स्थानीय लोगों के लिए वरदान है।

प्रसंस्करण खुबानी जूस व परासरणीय निर्जलित खुबानी

भारत में कृषि वानिकी की क्षमताओं का सदुपयोग करना

कुसुम अरूणाचलम्[1], महेश गुप्ता[2] एवं ए. अरूणाचलम[2]

[1]पर्यावरण एवं प्राकृतिक संसाधन विद्यालय, दून विश्वविद्यालय, देहरादून 248 001, उत्तराखण्ड

[2]भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, कृषि भवन, नई दिल्ली 110 001

ई-मेलः arun70@gmail.com

सारांश

कृषि वानिकी एक पारम्परिक भूमि उपयोग रीति है जिसकी डिजाइन स्थानीय परिस्थितियों, खाद्य जरूरतों तथा संवर्धन एकीकरण के अनुकूल तैयार की गई। देश में कृषि जलवायु क्षेत्र में भिन्नता और संवर्धन विविधता को देखते हुए इसे विभिन्न रूपों में उपयोग किया गया। क्षेत्रीय स्तर पर जहाँ वृक्ष आधारित कृषि प्रणालियाँ मानव सभ्यता का अभिन्न अंग बनी रहीं और इसके अंतर्गत व्यापक पारम्परिक पारिस्थितिक ज्ञान आधार बना रहा। विश्व स्तर पर जलवायु परिवर्तन परिदृश देखते हुए विकासशील विश्व विशेषकर दक्षिण एशिया में आर्द्र उष्णकटिबंधीय में ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन में कमी लाने की वैश्विक चुनौती का सामना करना पड़ रहा है जहाँ कृषि वानिकी रीतियों द्वारा कार्बन पृथक्करण प्रक्रिया में मदद मिल सकी। इसी प्रकार, कृषि वानिकी अथवा कोई वृक्ष आधारित कृषि प्रणाली में अनेक अप्रत्यक्ष लाभ होते हैं जैसे कि मृदा एवं जल संरक्षण, कार्बन पृथक्करण आदि जिन्हें पर्यावरणीय सेवाओं के रूप में वर्गीकृत किया गया है। अतः कृषि वानिकी प्रणालियों का मानव मूल्यों और आर्थिक लाभों के साथ इकोलॉजिकी सम्पर्क है।

परिचय

कृषि की संसाधन प्रभावी, पर्यावरणीय सकारात्मक तथा लाभकारी विधि के रूप में कृषि वानिकी लंबे समय से अपनी ओर सबका ध्यान आकर्षित कर रही है। कृषि प्रणाली में वृक्षों को शामिल करने और रेंज प्रबंधन करने से अनेक लाभ मिल सकते हैं। इन प्रणालियों से कहीं अधिक लगातार उत्पादन और लचीलेपन के परिणामस्वरूप प्रबंधन को भारत के बारानी इलाकों में किसानों के लिए तुरंत और क्षमताशील मूल्य वाली कृषि वानिकी प्रणाली बनाने के अनेक विकल्प मिलते हैं। सांस्कृतिक रूप से कृषि वानिकी का तात्पर्य भिन्न भिन्न लोगों के लिए अलग-अलग हो सकता है। उदाहरण के लिए, पूर्वोत्तर भारत के किसान कृषि वानिकी रीतियों के सामाजिक मूल्यों से जुड़े हुए हैं। प्राचीन 'टोंग्या' खेती इसी प्रकार की है। प्रायः इसमें वृक्षों के एकीकरण को शामिल किया जाता है, जिसमें एक प्रजाति अथवा किस्म को चरागाह के साथ इमारती लकड़ी के लिए उगाया जाता है लेकिन इसमें कहीं अधिक जटिल प्रणालियों को भी शामिल किया जाए जिसमें वार्षिकी तथा बारह मासी प्रजातियों वाली फसलों की किस्म और पशुओं के साथ वृक्ष भी शामिल होते हैं।

कृषि वानिकी एक एकीकृत पारिस्थितिकी प्रणाली

विशेषकर पिछली तीन से पाँच सदियों के दौरान, वृक्षारोपण में अभूतपूर्व सुधार देखने को मिला है। सर्वाधिक महत्वपूर्ण कृषि वानिकी रीति तमिलनाडु के कांगेयम भूभाग में जानी जाती है जहाँ वन चरागाह प्रणाली में *अकेशिया ल्यूकोफ्लोइया + सेंक्रस सेटीजेरस* को लागू किया गया। इसी प्रकार, यमुना और चम्बल नदी के बीहड़ों में बकरियों की दूध देने वाली जमुनापारी नस्लों और भेड़ का पालन करने के लिए घास के साथ वृक्षों, झाड़ियों और बाँस को उगाया गया। तमिलनाडु के अर्ध शुष्क इलाकों में बाजरा, ज्वार और मिर्च की फसल के साथ जगह-जगह वृक्षों को लगाया गया। देशभर में वृक्षारोपण ने चारदीवारी का कार्य किया और साथ ही हवा के कटाव के विरूद्ध रोकथाम की। राजस्थान राज्य में ऑन-फार्म पर विभिन्न उपयोग हेतु खेजरी (*प्रोसोपिस सिनेरेरिया*) का रोपण करना एक सामान्य रीति था।

तटवती इलाकों में *कैजुआरीना इक्वीसेटिफोलिया* और अन्य प्रजातियों के वृक्षों को नकद के लिए और साथ ही कम टिम्बर उत्पन्न करने के लिए ऑन फार्म भूमि पर फसलों के साथ उगाया गया। कृषि वानिकी प्रणाली के रूप में सजीव मेड प्रचलित थी जिसमें *लॉवसोनिया इनरमिस, अगैव सिसालैना* तथा *यूफोर्बिया* प्रजातियां प्रचलित थीं। धान की बुवाई वाले क्षेत्रों में, पोंगामिया ग्लैब्रा तथा सेस्बेनिया ग्रैण्डीफ्लोरा को उगाया गया, प्रतिवर्ष इनकी छंटाई की गई और इनकी पत्तियों का उपयोग हरी खाद के रूप में खेतों में किया गया। धान के खेतों में हरी खाद का प्रयोग करना मध्य प्रदेश और उत्तर प्रदेश राज्य में प्रचलित था। पश्चिमी घाट वाले इलाकों में, टर्मीनेलिया पत्तियों की तुड़ाई की गई, उन्हें जमीन पर फैलाकर जलाया गया और तब धान, रागी और कदन्न की फसलों को केरल, कर्नाटक, तमिलनाडु, त्रिपुरा, असम और अन्य पूर्वोत्तर राज्यों में एक प्रमुख कृषि वानिकी रीति के रूप में बहु मंजिला इलाकों अथवा गृह बगीचों में उगाया गया था। यह रीति अभी भी इन राज्यों में प्रचलित है। पूर्वोत्तर भारत में, पुराने समय में टोंग्या की कृषि वानिकी रीति से लगातार बदलाव आया है और इसमें गृह बगीचों

सहित कृषि रीति की ओर बदलाव की भिन्नता पाई जाती है।

कृषि वानिकी, सेवा प्रदाता

कृषि वानिकी प्रणालियों के लाभों में जमीन के ऊपर और नीचे दोनों जगह बढ़ी हुई संसाधन उपयोग प्रभावशीलता के लिए क्षमता, कुछ वृक्षों पर जड़ों का 10 से 80 मीटर की गहराई तक पहुंचना और कैनोपी अथवा वितान का 5 से 70 मीटर ऊँचाई तक पहुँचना शामिल है। वृक्षों द्वारा संसाधन, भूजल तथा पोषक तत्वों आदि को ग्रहण कर सकते हैं जो कि वार्षिकी पौधों के लिए अनुपलब्ध होते हैं। आमतौर पर वृक्षों में सभी के विरूद्ध प्रतिरक्षा होती है लेकिन इनमें सर्वाधिक गंभीर सूखे को झेलने की शक्ति भी होती है और जब पशुओं के लिए खाने को कुछ भी उपलब्ध न हो तब भी वृक्ष आपातकाल स्थिति में पशुओं को चारा प्रदान कर सकते हैं। वृक्षों के साथ जुड़कर अनेक लाभ हासिल किए जा सकते हैं जिनमें नाशीजीव की समस्या में कमी, छोटे क्षेत्र में उगाये जाने हेतु विविध जलवायु जरूरतों में पौधों में सूक्ष्म स्थल संशोधन और आजीविका और बिक्री के लिए विविध प्रकार के उत्पादों का उत्पादन शामिल है। साथ ही इसमें ईंधन की लकड़ी, जैव ईंधन, इमारती लकड़ी, खाद्य, चारा, भवन निर्माण सामग्री, औजारों के लिए सामग्री, रेशा तथा दवाईयां आदि शामिल हैं। वृक्ष हमें अनेक प्रकार के लाभ प्रदान करते हैं जिनमें शामिल हैं। मृदा का सुधार, कटाव का नियंत्रण, छाया, हवा में अवरोध, भूजल प्रबंधन, वन्यजीव के लिए मूलवास तथा सेलेनियम की कटाई। बढ़े हुए संसाधन आधार के साथ मिलकर विभिन्न प्रकार के उत्पाद और प्रयोजन किसानों के जोखिम को कम करने में मदद करते हैं। समय के साथ संवर्धन और प्रबंधन जरूरतों का प्रसार करके इन प्रणालियों द्वारा अतिव्यस्त कार्यभार को भी कम जा सकता है और साथ ही कहीं अधिक टिकाऊ अर्थव्यवस्था को सुनिश्चित किया जा सकता है। ये लाभ लगातार बढ़ रहे हैं और हालिया वर्षों में इनकी सराहना की गई है तथापि, इसका वर्णन लगभग साठ साल पहले पहली बार जे.आर. स्मिथ द्वारा किया गया था (स्मिथ, 1929)।

कृषि वानिकी, एक परम्परा

आन्तरिक टोंग्या

स्वीडेन प्रणालियों के वर्गीकरण में, 'आन्तरिक' तथा 'आंशिक' स्वीडेन के बीच भिन्नता की गई है। आंशिक अथवा पार्शियल स्वीडेन का आशय इसके प्रतिभागियों के केवल आर्थिक हितों की प्रबलता (नकदी फसल, पुनर्वास तथा स्कवेटर कृषि) से है जबकि आन्तरिक प्रणाली का आशय 'कहीं अधिक पारम्परिक, वर्ष भर, सामुदायिक वार, व्यापक रूप से स्वःनिहित तथा जीवन का विधिपूर्वक स्वीकृत तरीका'' (कोंकलिन, 1957) है। आन्तरिक स्थानांतरण खेती के सादृश्य ''आन्तरिक टोंग्या'' की प्रस्तावित अवधारणा का तात्पर्य भूमि उपयोग रीति के विचार का आह्वान करना है जो कि ग्रामीण विकास का कहीं अधिक सम्पूर्ण और सांस्कृतिक एकीकृत दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है जिसमें न केवल भूमि के टुकडे का अस्थाई उपयोग किया जाता है बल्कि गरीबी के स्तर पर मजदूरी भी प्रदान की जाती है लेकिन एक विविधीकृत और टिकाऊ कृषि वानिकी अर्थव्यवस्था में समान रूप से भाग लेने का अवसर मिलता है।

समृद्ध परती भूमि

इस दृष्टिकोण के दो विभिन्न स्वरूप हैंः आर्थिक रूप से समृद्ध परती भूमि जो कि नकदी अथवा आजीविका प्रयोजन के लिए मूल्यवान वृक्षों से समृद्ध परती वनस्पति की आर्थिक उपयोगिता को बढ़ाती है, तथा जैविक रूप से समृद्ध परती भूमि जो कि मृदा उर्वरता के शाकीय पुनर्जनन को बढ़ाती है और उसमें तेजी लाती है और साथ ही खरपतवारों की रोकथाम करती है। सघनीकरण अनुक्रम में क्रमशः लगभग 1-2 तथा 2-3 अवस्था में किसानों के लिए आकर्षक बन गई हैं। लंबे समय तक परती वन के मामले में किसान मृदा उर्वरता और खरपतवार नियंत्रण से जुड़ी तकनीकों को अपनाने के प्रति इच्छुक नहीं होते क्योंकि ये बहुत बड़ी समस्या नहीं होती हालांकि सुधरी हुई परती भूमि से आर्थिक लाभ के अवसरों के प्रति अच्छी प्रतिक्रिया मिल सकती है।

किसानों के परिवर्तनशील विचारों को ध्यान में रखते हुए टोंग्या चक्र का वन्य चरण स्वीडेन चक्र के परती चरण के समतुल्य है। दो प्रकार के उत्पादन का सफलतापूर्वक मिलान करने के लिए चरण की लम्बाई में अवश्य ही मिलान होना चाहिए। अतः आन्तरिक टोंग्या के लिए प्राथमिक संभावना का प्रवेश बिन्दु अवस्था 1 में होगा जब परती की लम्बाई व्यावसायिक वन्य वृक्षों के लिए बढ़वार अवधि की ही तरह वेग के समान क्रम में हो। हालांकि, इसे अवस्था 2 में भी शामिल करने की संभावना बन सकती है बशर्ते इसके लिए अल्प पुनरावृत्ति (दस वर्ष से कम) वाली वन्य प्रजातियों का चयन किया जाए अथवा कृषि रीति को सघनीकृत किया जा सकता है ताकि उपलब्ध परती भूमि में कमी को समायोजित किया जा सके जिससे कि लंबी अवधि वाले वन वृक्षों का रोपण किया जा सकेगा।

यदि पारम्परिक वन वृक्षों के स्थान पर फलदार वृक्षों का रोपण किया जाता है तब शिफ्टिंग खेती को बनाये रखने हेतु बहुत लंबी परती अवधि की जरूरत होगी चूंकि किसान भाई भारी फलन अवधि (जो कि कुछ वृक्षों के मामले में दस से सौ वर्ष तक बढ़ सकती है) के वर्षों में फलदार वृक्षों को काटना नहीं चाहेंगे। वास्तव में, फलदार अथवा आर्थिक रूप से मूल्यवान अन्य वृक्षों की रोपाई करना लंबे समय तक और लगातार उत्पादन देने वाला होता है जो

कि परती चक्र से भूमि को स्थायी रूप से हटाने का सबसे छोटा मार्ग बन सकता है। यदि परिणामतः भूमि उपयोग मिश्रण जिसमें जैविक रूप से समृद्ध अल्प परती भूमि अथवा पसंदीदा खेत फसलों की उत्पादन जरूरत को पूरा करने के अन्य उपाय पारम्परिक स्वीडेन रीति को बनाये रखने की तुलना में कहीं अधिक लाभकारी है तब वास्तव में यह कोई बुरा विचार नहीं है।

कृषि वानिकी–अर्थव्यवस्था एवं नीतिशास्त्र के साथ इकोलॉजी का सेतु

पारम्परिक रूप से सीमान्त क्षेत्रों में छोटे किसानों की आजीविका, आर्थिक व्यवहार्यता और कृषि उत्पादन में उल्लेखनीय रूप से सुधार लाने में कृषि वानिकी में पर्याप्त क्षमता है। इसके अलावा, कृषि वानिकी का उपयोग प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन की दिशा में परिवर्तनशील दृष्टिकोण के लिए एक टूल्स के तौर पर भी किया जा सकता है। कृषि वानिकी और वृक्षारोपण को सफलतापूर्वक शामिल करके किस प्रकार विस्तार द्वारा प्राकृतिक संसाधन प्रबंध को बेहतर रूप से समायोजित किया जा सकता है, यह जानने के लिए सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्र के प्रसार प्रतिनिधि को अपने कार्यक्षेत्र के भीतर कृषि वानिकी और समुदाय की सामाजिक आर्थिक स्थिति को समझने के लिए सार्थक प्रयास करना चाहिए। जहाँ कृषि वानिकी आर्द्र और अर्ध आर्द्र क्षेत्रों में पारम्परिक रूप से सफल रही है, बारानी क्षेत्रों में इसकी सबसे अधिक जरूरत है। बारानी क्षेत्र का लक्षणवर्णन गंभीर जलवायु चुनौतियों और तकनीकी एवं जैविक बाधाओं के आगे कृषि उत्पादन के अत्यधिक कम स्तर के रूप में किया जाता है। जबकि कृषि वानिकी को अपनाने की सीमाएं अनेक हैं, इसलिए इस कार्य में प्रसार एजेन्टों द्वारा किसानों के सामाजिक आर्थिक गुणों की पहचान करना बहुत जरूरी होता है ताकि यह जाना जा सके कि कैसे क्षमताशील इनोवेटर्स को लक्षित किया जाए जो कि अपने समुदाय के भीतर बदलाव ला सकते हैं। भागीदारी कार्यक्रमों के विकास, कहीं अधिक प्रभावी लक्ष्य तथा पारम्परिक संचार चौनल पर संकेन्द्रित फोकस पर कहीं ध्यान देने से शुष्क भूमि वाले इलाकों में कृषि वानिकी को अपनाने में बढ़ोतरी होगी। इसके बदले, प्राकृतिक संसाधनों के संबंध में किसानों का दृष्टिकोण कृषि वानिकी की सफलताओं एवं असफलताओं पर आधारित होता है जिससे अपघटित भूदृश्य विशेषकर शुष्क, बारानी कृषि पारिस्थितिकी तंत्र का पर्यावरणीय सुधार करने में मद्द मिलेगी। भारत में बारानी कृषि क्षेत्रों में विशिष्ट समस्याओं का सामना करना पड़ता है जिनका समाधान उन्नत कृषि उत्पादन और पर्यावरण संरक्षण दोनों के लिए किया जाना चाहिए। कृषि वानिकी से सीमित जल उपलब्धता, ईंधन की कमी, अपघटित मृदा तथा जैव विविधता की कमी जैसे मुद्दों का समाधान किया जा सकता है। जल की सीमित उपलब्धता वाले इलाकों में जब वृक्षों का उपयोग किया जाता है तब ग्लिरीसिडिया जैसे समुदाय द्वारा कृषि एवं पर्यावरण लाभ दोनों हासिल किए जा सकते हैं। आमतौर पर कृषि वानिकी के अनेक लाभ हैं जैसे कि सरप्लस वस्तुओं की बिक्री से आमदनी में बढ़ोतरी, पर्यावरण में सुधार और बढ़ी हुई जैव विविधता, आय का सृजन होने से शिक्षा तक बेहतर पहुँच का होना, भवन निर्माण सामग्री के लिए पेड़ों की कटाई से बचाव, औषधीय पौधों को शामिल करने पर स्वास्थ्य में सुधार, खाद्य स्रोतों की व्यापक विविधता और एक कृषि प्रणाली की ऊर्जा में बढ़ोतरी क्योंकि खाद का इस्तेमाल खाद्य की बजाय ईंधन के लिए किया जा सकता है। विशेषकर दक्षिण भारत के शुष्क भूमि वाले खेती इलाकों जैसी बारानी कृषि पारिस्थितिकी प्रणालियों में सफल कृषि वानिकी परियोजनाओं से मृदा में जैविक मात्रा में बढ़ोतरी की जा सकती है, मृदा की भौतिक विशेषताओं में सुधार लाया जा सकता है, फसल की उपज को बढ़ाया जा सकता है, मृदा में नाइट्रोजन की उपलब्धता को बढ़ाया जा सकता है, मृदा की जल धारण करने की क्षमता में बढ़ोतरी की जा सकती है और मृदा कटाव को कम किया जा सकता है। इसके अलावा, रासायनिक उर्वरकों में कमी होने के कारण प्रदूषण के स्तर में भी कमी आती है। पर्यावरण की दृष्टि से कहीं अधिक महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि इससे कृषि क्षेत्र की जैव विविधता में वृद्धि होती है (अरूणाचलम एवं साथी, 2002)।

कृषि वानिकी के वैज्ञानिक लाभों को हालांकि आर्द्र एवं अर्ध आर्द्र कृषि क्षेत्रों के भीतर अच्छी तरह से दस्तावेजी रूप दिया गया है और प्रसार एजेन्टों के सामने बारानी क्षेत्रों में इन लाभों का सफलतापूर्वक विस्तार करने की चुनौती है जहाँ सीमित संसाधन (यथा मृदा की उर्वरता और जल की उपलब्धता) होने के कारण पारम्परिक रूप से सीमान्त किसान पाए जाते हैं। प्रसार और शिक्षा जैसे सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारक स्थानीय और भागीदारी वाली प्रकृति के होने चाहिए। स्थानीय व्यक्तियों को प्रशिक्षण और शिक्षा प्रदान करने के लिए प्रसार प्रतिनिधि को कृषि वानिकी के तकनीकी पहलुओं के साथ साथ सामाजिक आर्थिक कारकों की महत्वपूर्ण भूमिका को भी समझना चाहिए और इसलिए उन्हें अपने कार्यक्षेत्र के भीतर विशिष्ट गाँवों तथा समुदाय की सामाजिक और संचार संबंधी बाधाओं पर कहीं अधिक ध्यान केन्द्रित करना प्रारंभ करना चाहिए। वास्तव में, सफलता की बुनियाद ''जिनके लिए वानिकी कार्यक्रम की रूपरेखा तैयार की गई, उन लोगों द्वारा भागीदारी'' पर आश्रित होती है। स्थानीय निवासियों की यह भागीदारी मौजूदा ''टॉप डाउन'' संरचना से विस्तार कार्यक्रमों का रूपांतरण करने में मदद करेगी, ''प्रौद्योगिकी हस्तांतरण'' में अग्रणी कार्यप्रणाली को 'बॉटम अप'' करने में और प्राथमिकताओं और लक्ष्यों को परिभाषित करने में प्रतिभागियों की मदद करेगी। इसमें, प्रतिभागी, प्रसार एजेन्टों

द्वारा दी जाने वाली शिक्षा और प्रशिक्षण के प्रति कहीं अधिक उत्तरदायी होते हैं। वास्तव में, ग्रामीण समुदाय में कृषि वानिकी कार्यक्रमों की क्षमताशील भागीदारी प्रवृत्ति जानकारी सृजन के लिए एक उपयोगी वेक्टर हो सकती है जिसमें जहाँ एक ओर स्थानीय जानकारी शामिल होती है वहीं दूसरी ओर ग्लोबल विज्ञान भी अन्तर्निहित होता है। परिवर्तन की संख्या पर निर्भर करते हुए ग्रामीण और समुदाय द्वारा लगातार विभिन्न स्रोतों से जानकारी हासिल की जाती है और प्रसार प्रतिनिधि द्वारा वैश्विक विज्ञान और स्वदेशी ज्ञान के कड़े विरोधाभास पर कम बल देना चाहिए क्योंकि यह वृक्ष प्रबंधन और कृषि वानिकी के अंगीकरण दर के लिए नुकसानदायक हो सकता है। अंततः यह पुरजोर वकालत की जाती है कि निश्चित रीतियों का समर्थन करने के लिए अनेक जानकारी स्रोतों के स्थान पर सिनर्जी अथवा सहक्रियाशीलता होनी चाहिए। भारत के बारानी क्षेत्रों में रहने वाले समुदायों द्वारा पहले से ही वृक्ष प्रबंधन के बारे में जानकारी का विकास कर लिया गया है, हालांकि, ये जानकारी प्रणालियाँ खुली हुई हैं जिससे कि सूचना का आदान प्रदान करने में मदद मिलती है जो कि बारानी कृषि क्षेत्रों में ग्लोबल टिकाऊ कृषि पारिस्थितिकी तंत्र के साथ स्थानीय जानकारी की तुलना द्वारा 'बंद प्रणाली' में बढ़ोतरी करने के स्थान पर नवाचार के प्रति कहीं अनुकूल हैं। और साथ ही इन्हें समुचित प्रसार और शिक्षा के बिना हासिल नहीं किया जा सकता। छोटे भू स्वामियों के लिए पड़ोसियों और प्रसार प्रतिनिधि के साथ व्यक्तिगत संचार बनाना संचार और जानकारी भागीदारी के दो तरीके हैं जो कि वृक्षारोपण और क्षमताशील अंगीकरण के साथ मजबूती से जुड़े हुए हैं। बाध ाओं को समझते हुए, प्रसार प्रतिनिधि किसानों की क्षमता निर्माण को बढ़ाने में सफल होंगे जिससे जहाँ एक ओर कृषि वानिकी के कम आर्थिक नुकसान को प्रदर्शित करने में मदद मिलेगी वहीं दूसरी ओर कृषि उपज में पर्यावरणीय लाभों और सुधारों का सदुपयोग करने में भी मदद मिल सकेगी। अतः सफल कृषि वानिकी का महत्व कृषि उत्पादन और आर्थिक लक्ष्य को हासिल करने से भी अधिक है तथा साथ ही यह इस प्रकार की समझ विकसित करने में भी महत्वपूर्ण है कि क्यों किसी भी पारिस्थितिकी तंत्र की टिकाऊ उत्पादकता में प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन और पर्यावरण संरक्षण महत्वपूर्ण होते हैं। प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन का भविष्य किसानों के दृष्टिकोण पर निर्भर करता है जिसको प्रसार सेवाओं द्वारा मार्गदर्शित संचार चौनलों से प्राप्त होने वाली जानकारी द्वारा अलग अलग तरीके से मूर्त रूप दिया जाता है। इनमें से एक मृदा उर्वरता में पोषक तत्व प्रबंधन है जो कि फसलचक्र प्रणालियों के लिए अत्यंत महत्व का विषय है। भारतीय बारानी कृषि में पोषक तत्व प्रबंधन की पुनः जाँच करने की जरूरत है ताकि कृषि उत्पादकता के भविष्य को समझा जा सके, और अपघटित भूदृश्य में कृषि वानिकी के अपरिहार्य महत्व के बारे में जानकारी हासिल की जा सके। इस प्रकार के नवीन दृष्टिकोण का उद्देश्य उन्नत भूमि प्रबंध ान को अपनाने की दिशा में स्थानीय परिस्थितियों तथा किसानों की क्षमताओं व नजरिये को बेहतर तरीके से समझना है। साथ ही यह भारत की अपघटित बारानी कृषि मृदाओं में पोषक तत्व प्रबंधन संबंधी मुद्दों का विश्लेषण करने के लिए भी एक उपयोगी सयंत्र है। प्रायः यह महसूस किया जाता है कि बढ़े हुए खाद्य उत्पादन में कृषि पारिस्थितिकी तंत्र बाधाएं अक्सर इन क्षेत्रों में रह रहे संसाधनहीन किसानों के बीच खराब भूमि प्रबंधन के कारण बदतर होती हैं। अतः स्थानीय परिस्थितियों में नई मृदा एवं फसल चक्र प्रणाली प्रबंधन को अपनाया जाना चाहिए ताकि मौजूदा प्राकृतिक आधार को नुकसान पहुँचाये बिना टिकाऊ कृषि उत्पादन सुनिश्चित किया जा सके।

कृषि-वानिकी में फलदार वृक्षो से आय वर्धन

गोविंद विश्वकर्मा[1], फातिमा जमान[2], रंजीत पाल[1], सुकन्या मिश्रा[1], गौरव शर्मा[1], राजीव कुमार[1], लालचंद जाट[1] एवं शिवाली शर्मा[1]

[1]रानी लक्ष्मी बाई केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालय, झाँसी (उ.प्र.) 284003

[2]श्री गुरु राम राय विश्वविद्यालय, देहरादून (उत्तराखण्ड)

ई मेलः govind0139@gmail.com

सारांश

कृषि-वानिकी-बागवानी प्रणाली संसाधनों का सतत उपयोग प्रदान करती है। यह भूमि की एक ही इकाई से लकड़ी, भोजन, फल, चारा एक साथ उपलब्ध कराती है। यह अनुमान लगाया गया है कि बढ़ती आबादी और बदलते आहार सेवन से 2050 तक वैश्विक खाद्य आवश्यकता में लगभग 80-120% की वृद्धि होगी, इसलिए मौजूदा मॉडल और प्रणालियों में उपयुक्त हेर-फेर प्रति यूनिट क्षेत्र और कृषि-वानिकी में अधिकतम उत्पादकता प्राप्त करने के लिए अत्यंत आवश्यक है। बढ़ती मानव आबादी भोजन और प्राकृतिक संसाधनों की अभूतपूर्व मांग करती है। कृषि वानिकी कृषि में बड़े पैमाने पर विविधीकरण के लिए एक किफायती और पारिस्थितिक रूप से व्यवहार्य विकल्प प्रदान करता है। कृषि-वानिकी- बागवानी प्रणाली स्थापित करके अधिक विविधीकरण प्राप्त की जा सकता है। इस प्रणाली में एक ही समय में एक ही भूमि पर कृषि फसलों, पेड़ों और फलों के पेड़ों को एक साथ उगाया जाता है। यह भारत के उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में होम गार्डन के रूप में बहुत आम है, लेकिन उत्तर भारत के अर्ध शुष्क क्षेत्रों में यह चुनिंदा तौर पर पाया जाता है हालांकि इन इलाकों में इसे अपनाने की बेहद क्षमता है।

कृषि-वानिकी-बागवानी की आवश्यकता

बागवानी इसके लिए एक व्यवहार्य विकल्प प्रतीत होता है कृषि-वानिकी-बागवानी प्रणाली में बारहमासी पेड़ जंगल के बाहर वृक्षों के आवरण को बढ़ाने का विकल्प प्रदान करते हैं। चूँकि, दुनिया जलवायु परिवर्तन के मुद्दों का सामना कर रही है, इसलिए ये सिस्टम लगातार बढ़ते तापमान से निपटने के लिए वृक्षों का अधिकतम क्षेत्र प्रदान कर सकते हैं। पर्यावरण सुधार के अलावा पेड़ विभिन्न लकड़ी और गैर लकड़ी उत्पाद प्रदान करते हैं, जो किसानों को उनकी आय के स्रोत और विभिन्न लाभों को बढ़ाने में मदद करते हैं। वन वृक्षों की पंक्तियों के बीच उगाए गए फलों के पेड़ किसानों को मौसमी आय प्रदान करते हैं। देश के उत्तरी क्षेत्र में किसान अपनी आजीविका सुरक्षा के लिए वर्ष के एक विशेष समय के दौरान एकल उपज पर निर्भर हैं, इसलिए एक ऐसी भूमि उपयोग प्रबंधन प्रणाली विकसित करने की आवश्यकता है, जो न केवल स्थायी कृषि उत्पादन प्रदान करे, बल्कि पूरे वर्ष गरीब किसानों को आर्थिक स्थिरता प्रदान करे। इस संबंध में कृषि-वानिकी-बागवानी एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। लेकिन इन प्रणालियों का डिजाइन, जब ग्रामीण विकास रणनीति के रूप में उपयोग किया जाता है, तब इनकी सफलता या विफलता का वास्तविकता में मालूम होता है। इसलिए, कुछ जलवायु परिस्थितियों और प्रजातियों के अनुकूल क्षेत्रीय मॉडलों को शुरूआत करने की आवश्यकता है। इस प्रणाली में उचित वन-संस्कृति और कृषि प्रबंधन अनिवार्य है क्योंकि भूमि का एक ही टुकड़ा पौधों को पोषक तत्व और अन्य संसाधन प्रदान कर रहा है, इसलिए उपलब्ध पोषक तत्वों की मात्रा के लिए मिट्टी की देखभाल की जानी चाहिए और पेड़ों के प्रशिक्षण और छंटाई के लिए एक उचित कार्यक्रम अधिकतम उत्पादन के लिए अनुकूल है।

ऐसी प्रणालियों में नाइट्रोजन स्थिरीकरण वृक्षों को शामिल करने से कुछ प्रत्यक्ष लाभ होते हैं। इनमें मिट्टी की उर्वरता बढ़ाने की क्षमता होती है। वे कार्बनिक कार्बन और उपलब्ध पोटेशियम की स्थिति के अलावा मिट्टी के एकत्रीकरण और अधिकतम जल धारण क्षमता में उल्लेखनीय वृद्धि कर सकते हैं। कृषि-वानिकी-बागवानी प्रणाली में उगाए गए वन वृक्ष निचले स्तरों में उगने वाले पौधों पर भारी छाया का कारण बन सकते हैं। चूँकि कृषि-वानिकी में धूप सबसे आम सीमित कारक है, इसलिए छाया फलों के पेड़ों और नीचे उगने वाली वार्षिक फसल के लिए हानिकारक हो सकती है। इसी कारणवश छाया की माँग करने वाले वृक्षों को लगाना फायदेमंद रहता है।

विभिन्न वृक्षारोपण प्रजातियाँ

अदरक, रतालू, कोलोकैसिया, हल्दी, कॉफी, काली मिर्च आदि जैसी प्रणालियों में सफलतापूर्वक पनप सकती है। ऐसी प्रणालियों में पर्णपाती पेड़ सफलतापूर्वक स्थापित किए जा सकते हैं क्योंकि वे समय की अवधि के लिए पत्ती रहित रहते हैं और इस प्रकार फसल को बढ़ने में मदद करते हैं। वृक्षों और फलों की फसल के बीच व्यापक अंतर पहले कुछ वर्षों के लिए अंतरफसलों को पूर्ण रूप से

बढ़ने का अवसर देता है एवं उचित ढंग से धूप तथा अन्य संसाधनों की उपयोगिता प्रदान करता है। पेड़-फसल संयोजनों में पेड़ों की छाया से फसल की उपज निश्चित रूप से प्रभावित होती है, लेकिन संसाधनों के उपयोग की दक्षता खुली परिस्थितियों की तुलना में पेड़ों के नीचे बेहतर होती है। हालांकि, प्रणाली के आधार पर संयोजन की उत्पादकता शुद्ध फसल से अधिक है। इसके अतिरिक्त, सीमित भूमि जोत वाले छोटे किसानों द्वारा कई लाभ प्राप्त किए जा सकते हैं। हालांकि अंतरफसल घटकों का चयन प्रतिस्पर्धा को कम करने और आपस में पूरक रूप से अधिकतम करने के सिद्धांत पर आधारित होना चाहिए। अंतरफसल प्रणालियों में उपयुक्त उत्पादकता का दोहन करने के लिए पर्याप्त देखभाल और उचित प्रबंधन आवश्यक है।

कृषि वानिकी नीति

कृषि वानिकी नीति के निर्माण सहित अनुसंधान, विनियमित बाजार और परिभाषित नीति में निरंतरता किसानों को उच्च उत्पादकता और आजीविका सुरक्षा के लिए इस प्रणाली को अपनाने के लिए प्रेरित करने में अनुकूल होगी। किसानों के लिए अंतरफसल विकल्पों का मूल्यांकन करने के लिए लाभ और लागत का वितरण महत्वपूर्ण है। एक प्रणाली जीवविज्ञानी/पारिस्थितिकी विज्ञानी के लिए तकनीकी रूप से व्यवहार्य हो सकती है, लेकिन किसानों के लिए अप्रासंगिक हो सकती है। यह मोटे तौर पर अर्थशास्त्र है, जो यह निर्धारित करता है कि पेड़-फसल हस्तक्षेप एक अवसर है या बोझ। बहु फसल (कृषि-वानिकी-बागवानी सिस्टम) को पारंपरिक चावल-गेहूँ रोटेशन की तुलना में आर्थिक रूप से व्यवहार्य दो से तीन गुना अधिक आय प्रदान करने वाला पाया गया है और अनगिनत प्रगतिशील किसानों ने इसे अपनाने की स्वतः इच्छा दिखाई है।

वृक्ष प्रजातियां

विभिन्न वृक्ष प्रजातियाँ जिन्हें इस प्रणाली में सफलतापूर्वक स्थापित किया जा सकता है, वे हैं बबूल, शीशम, सेल्टिस ऑस्ट्रालिस, ग्रेविया ऑप्टिवा, सफेदा, सागौन, पॉपलर, मेलिया आदि। इन पेड़ों की प्रजातियों के बीच उठाए जा सकने वाले फलों के पेड़ पपीता, संतरा, अनार, आँवला, बेर, चीकू, आम, अमरुद एवं शरीफा हैं। हालाँकि किसान इन प्रणालियों के तहत मौसमी फसलों पर वार्षिक किस्म ले सकते हैं, लेकिन छाया-प्रेमी फसलें कृषि-वानिकी-बागवानी प्रणाली के तहत उगाने के लिए उपयुक्त हैं। दलहन इस प्रणाली के लिए महत्वपूर्ण कृषि योग्य फसलें हैं। हालांकि, आवश्यकताओं के आधार पर, ज्वार और बाजरा जैसी फसलों को फलों के पेड़ों के बीच में उगाया जा सकता है। आंवला, मीठा संतरा और अमरूद महत्वपूर्ण फल फसलें हैं जिनमें कृषि-वानिकी-बागवानी प्रणाली के तहत शुष्क क्षेत्र में बढ़ने की क्षमता है।

कृषि-वानिकी-बागवानी प्रणाली

विभिन्न शोधकर्ताओं द्वारा कृषि-वानिकी-बागवानी प्रणाली के तहत सफेदा, किन्नू और गेहूँ का अध्ययन किया गया है और अर्ध-शुष्क क्षेत्रों के तहत उपयुक्त पाया गया है। सफेदा एक लघु रोटेशन तेजी से बढ़ने वाली पेड़ की प्रजाति है, जिसकी प्लाई और प्लाईवुड उद्योगों में उच्च माँग है। पेड़ 4-5 साल की अवधि में परिपक्व होता है और उचित खरीद का आश्वासन देता है। सुगंध और आवश्यक तेल पर आधारित विभिन्न उद्योग कच्चे माल के रूप में सफेदे की माँग करते हैं। विभिन्न अध्ययनों के परिणामों से पता चला है कि अकेले किन्नू + नीलगिरी और किन्नू के तहत औसत अनाज उपज में कमी क्रमशः 68.9 और 40 प्रतिशत तक हो सकती है, जो संभवतः प्रकाश के लिए प्रतिस्पर्धा के कारण है। इसे पेड़ों के लिए छँटाई, पतलेपन और अन्य सिल्विकल्चरल प्रथाओं के उचित

वर्षा आधारित फलो का चुनाव

वर्षा (मिमी)	समतल भूमि	पठार और उप पर्वतीय क्षेत्र
500 से ज्यादा	बेर, फालसा, अंजीर, करोंदा, लसोड़ा, झरबेर, खेजरी	सीताफल, बेल, करोंदा, जामुन
500–1000	बेर, आंवला, कैंथ, सीताफल, जंगली खजुर, अमरुद, नींबू, आम, ईमली	बेर, सीताफल, चीरोंजी, कैंथ, करोंदा, आम,, नींबू, आम, ईमली, अनार
1000 से ज्यादा	आम, लीची, कटहल, नारंगी, जामुन, ईमली महुआ	आम, कटहल, अमरुद, महुआ, अनार

शुष्क क्षेत्र के लिए फलों की प्रमुख किस्में

फल	किस्म
बेर	गोला, मुण्डिया, कैथली, बनारसी कड़ाका, अगेती उमरान
आंवला	एन ए–4, एन ए–5, एन ए–6, एन ए–7, एन ए–10
अनार	पी–23, पी–26, आई आई एच आर सेलेक्सन, मृदुला, भगवा
सीता फल	बालानगर, ममाथ, लाल सीताफल, अर्का सहन, जी जे सी ए–1
अमरुद	इलाहाबाद सफेदा, सरदार, कोहिर सफेदा, सफेदा जैम, अर्का मृदुला
पपीता	पूसा डेलीसीयस, हनी डिव, पूसा मैजेटी, पूसा ड्वार्फ, पूसा जाइंट
बेल	एन बी–5, एन बी–9
चीकू	कालीपट्टी, क्रिकेट बाल
अंजीर	पूना अंजीर, ब्लैक इश्किया
आम	बंग्लोरा, नीलम, केसर, बम्बई हरा

प्रबंधन के माध्यम से या कम रोशनी की माँग वाली प्रजातियों को उगाकर हल किया जा सकता है।

कृषि-सिल्वी-बागवानी प्रणाली के प्रत्यक्ष लाभ

- यह प्रणाली कई लाभ प्रदान करती है और भोजन, फल, चारा, लकड़ी और ईंधन की लकड़ी आदि जैसे विभिन्न उत्पाद प्रदान करती है।
- मिट्टी के कटाव और पोषक तत्वों की हानि को कम करके और खेत की उत्पादक क्षमता को बढ़ाकर खेत की पारिस्थितिकी में सुधार करता है।
- फलों के पेड़ ग्रामीण क्षेत्रों में पोषण सुरक्षा प्रदान करते हैं।
- यह फल या पेड़ उत्पादों की बिक्री के माध्यम से आय के स्रोतों को बढ़ाकर ग्रामीण क्षेत्र में किसानों की आजीविका को स्थिरता प्रदान करता है।

निष्कर्ष

कृषि वानिकी बागवानी प्रणाली संसाधनों, भूमि एवं समय का सतत् उपयोग प्रदान करती है। जिसमें वन्य क्षेत्रों के साथ फलदार वृक्षों को भी शामिल किया जाता है। वन्य वृक्षों की आयु अधिक होती है जिनसे कीमती लकड़ियाँ प्राप्त होती है परंतु फलदार वृक्षों के सम्मिलन से लकड़ीयों के साथ-साथ 3-4 वर्षों के अन्दर ही फल प्राप्त होने लगते है जोकि लगभग 25-30 वर्षों तक लगातार देते रहते है। जो कि वन्य वृक्षों के तैयार होने तक आय का साधन बनते है।

भारत में कृषि वानिकीः किसानों के लिए वर्तमान के समय की जरूरत

डॉ. गिरधारी लाल मीना[1], डा. लतिका शर्मा[1] एवं डा. अर्जुन सिंह राजपूत[1]

[1]राजस्थान कृषि महाविद्यालय, एम.पी.यू.ए.टी., उदयपर, राजस्थान

सारांश

आज भारतीय कृषि विविध चुनौतियों और बाधाओं का सामना कर रही है जैसा कि बढ़ता जनसांख्यिकी दबाव, बढ़ती हुई भोजन की माँग, चारे की जरूरतें, प्राकृतिक संसाधनों का ह्रास और जलवायु परिवर्तन आदि। इसलिए आज एक प्रबंधन प्रणाली तैयार करने की आवश्यकता है जो सीमान्त कृषि भूमि से भोजन का उत्पादन करने और उत्पादन को बनाए रखने में सक्षम हो और साथ ही उत्पादन पर्यावरण की गुणवत्ता में सुधार कर सके। कृषि वानिकी ही एकमात्र ऐसा विकल्प है क्योंकि जिसमें एक तरफ पूरक ईंधन, चारा, फल और रेसा प्राप्त करने और पारिस्थितिक तंत्र को स्थिर करने के लिए कृषि में बड़े पैमाने पर विविधीकरण के लिए किसानों और ग्रामीण लोगों के समुदाय को आर्थिक और पारिस्थितिक रूप से व्यवहार्य विकल्प प्रदान करने की जबरदस्त क्षमता है। दूसरी ओर पारिस्थितिक तंत्र को स्थिर करना (वृक्षों के आवरण में वृद्धि, लकड़ी और अन्य लकड़ी के उत्पादों का उत्पादन जो की जंगलों पर दबाव कम करता है)। लकड़ी का इस्तेमाल ईंधन, फर्नीचर, मचान, लुगदी, पेपर, केबिन, वाद्ययंत्र, फर्श का सामान, खेल के सामान आदि सब जगह होता है। लेकिन भारत में लकड़ी का उत्पादन पर्याप्त नहीं है। भारत में इस्तेमाल की जाने वाली कुल लकड़ी का लगभग 25 प्रतिशत आयात होता है, जबकि निर्यात केवल उसका 10 प्रतिशत है। इसके कारण भारत और विदेशों में लकड़ी का एक बहुत बड़ा वैश्विक बाजार तैयार हो गया है। भारत में बढ़ते जीवन स्तर की वजह से लकड़ी की माँग लगातार बढ़ती जा रही है। जलवायु परिवर्तन समग्र विश्व में कृषि के लिये नकारात्मक परिणाम उत्पन्न कर रहे है। अचानक आने वाली बाढ़, सूखा, बेमौसम बारिश, ओलावृष्टि, ग्रीष्म व शीत लहरें जैसी घटनाएँ कृषि अभ्यासों को नई जलवायु वास्तविकताओं के अनुकूल बनाने की माँग रखती हैं। इस परिदृश्य में कृषि-वानिकी भारत के साथ-साथ अन्य विकासशील देशों के लिये अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। कृषि वानिकी (पेड़ों पर आधारित खेती) आर्थिक रूप से किसानों के लिए बहुत मददगार है। कृषि वानिकी, किसानों के लिये नई संभावनाओं के दरवाजे खोल देती है। इसमें किसान ज्यादा पैसा कमाने के साथ साथ पर्यावरण को सुधारने और खराब होने से बचाने में भी मदद कर सकता है।

कृषि-वानिकी के प्रति भारत का रुख

भारत में वैज्ञानिक वानिकी यद्यपि चंद्रगुप्त मौर्य के शासन काल में ही प्रारंभ हो चुकी थी। उस समय वन एवं वन्य प्राणियों के संरक्षण हेतु वन्यजीव प्राणी अभ्यारण्य बनाये गए थे तद्नुसार सम्राट अशोक महान के शासन काल के शिलालेख मिलते हैं। परन्तु सन् 1864 में वन महानिरीक्षक के रूप में जर्मन वैज्ञानिक *डॉ. ब्रैंडिस* की नियुक्ति के साथ आधुनिक काल में वनों के वैज्ञानिक प्रबन्धन की नियमित शुरूवात भारत में हुई।

1. वर्ष 2014 में भारत रोजगार, उत्पादकता और पर्यावरण संरक्षण को बढ़ावा देने के लिये एक 'राष्ट्रीय कृषि-वानिकी नीति' अपनाने वाला विश्व का पहला देश बना।
2. वर्ष 2016 में राष्ट्रीय कृषि-वानिकी नीति' के अंतर्गत लगभग 1,000 करोड़ रुपए परिव्यय के 'कृषि-वानिकी पर उप-अभियान' की शुरुआत की गई ताकि 'हर मेड़ पर पेड़' के टैगलाइन के साथ कृषि-वानिकी को एक समग्र राष्ट्रीय प्रयास का रूप दिया जा सके।
3. वर्ष 2022-23 के केंद्रीय बजट में भारत के वित्त मंत्री ने घोषणा की कि भारत सरकार कृषि वानिकी को बढ़ावा देगी।
4. हालाँकि कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय ने कृषि-वानिकी पर उप-अभियान का राष्ट्रीय कृषि विकास योजना के साथ विलय कर दिया जिसने कृषि-वानिकी क्षेत्र को अपनी प्रमुख कार्यान्वयन शाखा से वंचित कर दिया।

कृषि-वानिकी क्या है?

कृषि वानिकी यानि पेड़ों पर आधारित खेती, एक ऐसी पद्धति है जिसमें खेतों में परंपरागत फसलों के साथ-साथ पेड़ लगाए जाते हैं। कृषि वानिकी का अर्थ है 'एक ही भूमि पर कृषि फसल एवं वृक्ष प्रजातियों को विधिपूर्वक रोपित कर आय बढ़ाना।' कृषि वानिकी के अन्तर्गत काष्ठीय बारहमासी प्रजातियाँ एक ही भूमि पर कृषि फसलों के साथ उगाई जाती है। कृषि-वानिकी में वृक्षारोपण, फसल उत्पादन और पशुपालन को इस तरह से एकीकृत किया जाता है जोकि वैज्ञानिक दृष्टिकोण से अत्यंत उपयुक्त हो। यह उत्पादकता, लाभप्रदता, विविधता और पारिस्थितिकी तंत्र की संवहनीयता को बढ़ाने में सहायक होती है। यह पद्धति आर्थिक रुप से लाभप्रद, सामाजिक रुप से स्वीकार्य तथा समस्त भूमि सुधारक प्रक्रियाओं का समेकित नाम है।

कृषि वानिकी की आवश्यकता क्यों?

हमारे देश की अर्थव्यवस्था मुख्यतः कृषि पर आधारित है। प्राकृतिक आपदाओं से फसल नष्ट होने पर कृषकों को आर्थिक क्षति पहुँचती है। उत्पादन अधिक होने पर मूल्य बहुत कम हो जाने से कृषक को लागत भी प्राप्त नहीं होती है। कृषि वानिकी को अपनाकर कृषक खेती में विविधता लाकर अनाज के साथ ही जलौनी व इमारती लकड़ी, कृषि औजारों की लकड़ी, पशुओं के लिए चारा खेतों से प्राप्त कर अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करने के साथ ही अपनी आर्थिक स्थिति सुदृढ़ कर सकते हैं। कृषकों द्वारा पारम्परिक कृषि वानिकी का त्याग किया जा रहा है। ऐसी परिस्थिति तथा वर्तमान पर्यावरणीय समस्याओं को देखते यह आवश्यक है कि इस क्षेत्र में वैज्ञानिक तरीके से कृषि वानिकी पद्धतियों को अपनाया जाये जिससे कि कृषकों को अधिक लाभ हो सके। कृषि वानिकी को कृषि प्रणाली में सम्मिलित करने के अनेक प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष कारण है जो कि मानचित्र-1 में दर्शाया गया है।

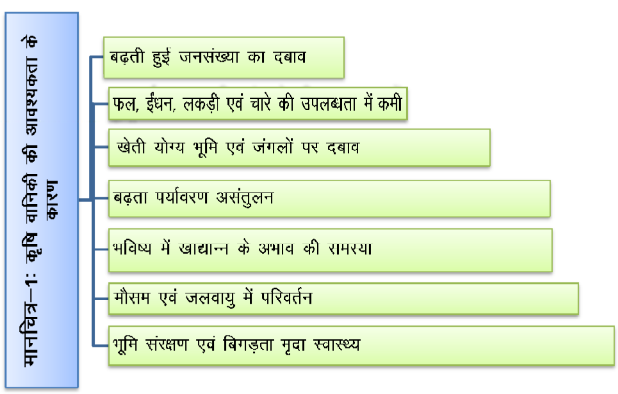

मानचित्र-1: कृषि वानिकी की आवश्यकता के कारण

कृषि-वानिकी महत्त्वपूर्ण कैसे है?

1. **आर्थिक मूल्यः** यह देश की ईंधन लकड़ी आवश्यकताओं के लगभग आधे हिस्से, लघु इमारती लकड़ी की माँग के लगभग दो-तिहाई हिस्से, प्लाईवुड आवश्यकता के 70-80 प्रतिशत भाग, लुग्दी उद्योग के लिये कच्चे माल के 60 प्रतिशत भाग और हरा चारा के 9-11 प्रतिशत हिस्से की पूर्ति करती है।वृक्ष उत्पाद और वृक्ष द्वारा प्रदत्त सेवाएँ ग्रामीण आजीविका में भी महत्त्वपूर्ण योगदान देती हैं। फल, चारा, ईंधन, रेसा, उर्वरक और इमारती काष्ठ, खाद्य व पोषण सुरक्षा एवं आय सृजन में योगदान करते हैं, साथ ही फसल खराब होने पर बीमा के रूप में कार्य करते हैं।
2. **कार्बन प्रच्छादनः** कृषि-वानिकी या वृक्ष-आधारित खेती एक स्थापित प्रकृति-आधारित गतिविधि है जो कार्बन-तटस्थ विकास में सहायता कर सकती है। यह वनों के बाहर वृक्षावरण का विस्तार करती है, प्राकृतिक वनों की तरह कार्बन प्रच्छादन में योगदान करती है और इस तरह उन पर से दबाव को कम करती है और किसानों की आय को बढ़ाने में मदद करती है।
3. **उर्वरकों की खपत में कमीः** कृषि-वानिकी प्रणालियों में उगाए जाने वाले नाइट्रोजन-स्थिरीकरण वृक्ष प्रति वर्ष लगभग 50-100 किलोग्राम नाइट्रोजन प्रति हेक्टेयर स्थिरीकरण में सक्षम हैं। यह कृषि-वानिकी प्रणाली के सबसे आशाजनक घटकों में से एक है। गिरी हुई पत्तियाँ अपघटित होकर ह्यूमस का निर्माण करती हैं और कार्बनिक पदार्थ तथा पोषक तत्व प्रदान कर मृदा की गुणवत्ता को समृद्ध करती हैं। यह उर्वरक आवश्यकता को भी कम करती है। रासायनिक उर्वरकों की कम आवश्यकता के कारण कृषि-वानिकी जैविक खेती को पूरकर्त्ता प्रदान कर सकती है।
4. **पारिस्थितिकी के अनुकूलः** कम रसायनों के उपयोग से जलवायु पर मानवजनित प्रभावों को कम करने में भी मदद मिलती है। कृषि-वानिकी कटाव नियंत्रण एवं जल प्रतिधारण, पोषक तत्वों के पुनर्चक्रण, कार्बन भंडारण, जैव-विविधता संरक्षण और स्वच्छ हवा में मदद करती है और मौसमी घटनाओं का मुकाबला कर सकने में सक्षम बनाती है।
5. **वैश्विक जलवायु लक्ष्यः** कृषि-वानिकी जलवायु व मरुस्थलीकरण विषयों में भारत को अपने अंतर्राष्ट्रीय दायित्वों को पूरा करने में भी मदद कर सकती है। वर्ष 2030 तक अतिरिक्त वन और वृक्षों के आवरण के माध्यम से 2.5 से 3 बिलियन टन कार्बन डाइऑक्साइड समतुल्य अतिरिक्त कार्बन सिंक का सृजन और वर्ष 2070 तक शुद्ध-शून्य की प्राप्ति का लक्ष्य है तथा साथ ही साथ वर्ष 2030 तक 26 मिलियन हेक्टेयर भूमि में क्षरण तटस्थता को प्राप्त करना है।
6. **बेहतर कृषि उपजः** सामान्य मृदा की तुलना में वन-प्रभावित मृदा में फसलों की अधिक पैदावार देखी गई है। उपयुक्त कृषि-वानिकी प्रणाली मृदा के भौतिक गुणों में सुधार करती है, मिट्टी के कार्बनिक पदार्थों को बनाए रखती है और पोषक चक्रण को बढ़ावा देती है। कृषि-वानिकी संवहनीय नवीकरणीय बायोमास आधारित ऊर्जा के उत्पादन और संवर्द्धन में भी मद्द करती है।

अर्थव्यवस्था में कृषि वानिकी का योगदान

भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि वानिकी के योगदान मानचित्र-2 को निम्नलिखित बिंदुओं से समझा जा सकता है।

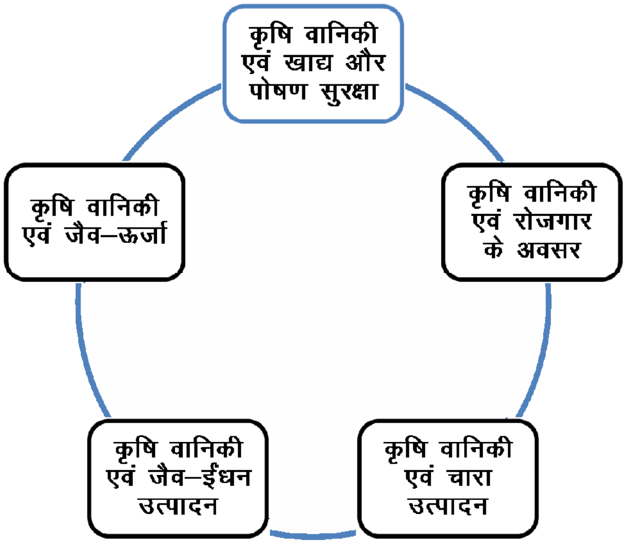

मानचित्र-2: अर्थव्यवस्था में कृषि वानिकी के योगदान

कृषि वानिकी एवं खाद्य और पोषण सुरक्षा

आजादी के बाद से देश के खाद्य उत्पादन में पाँच गुना वृद्धि हुई है लेकिन खाद्य आपूर्ति में हालिया सुधार बढ़ती आबादी के कारण औसत व्यक्ति की पोषण संबंधी जरूरतों को पूरा करने के लिए अपर्याप्त हैं। उपयुक्त वृक्ष-फसल/फलियाँ संयोजन के साथ कृषि वानिकी एक विकल्प है। विभिन्न कृषि वानिकी प्रणालियाँ देश की खाद्य सुरक्षा को बढ़ाने के लिए वांछित विविधीकरण प्रदान करती हैं और सूखे और अन्य तनाव की स्थिति के दौरान खराब उत्पादन के खिलाफ एक ढाल के रूप में कार्य करती हैं। कृषि वानिकी विविध उत्पादन प्रणालियों के कारण पोषण सुरक्षा भी प्रदान करती है जिसमें किसानों द्वारा उगाई जाने वाली सामान्य खाद्य फसलों के अलावा फल, सब्जियाँ, तिलहन फसलें, औषधीय और सुगंधित पौधे शामिल हैं। सब्जियों की फसलें सामान्य खाद्य फसलों की तुलना में औसतन अधिक लाभ देती हैं। मटर और लोबिया जैसी फसलें क्रमशः सर्दी और गर्मी के महीनों के दौरान पेड़ों के नीचे सफलतापूर्वक उगाई जा सकती हैं और ये फसलें वायुमण्डलीय नाइट्रोजन को भी ठीक कर सकती हैं और सब्जी फसलों के उत्पादन से अतिरिक्त आय प्रदान करने के साथ-साथ मिट्टी की उर्वरता की स्थिति में सुधार कर सकती हैं। कृषि वानिकी में भारत के शुष्क क्षेत्र के प्रोसोपिस सिनेरिया-आधारित कृषि वानिकी प्रणाली जैसी प्रणालियों में प्रति इकाई क्षेत्र में खाद्य उत्पादन को बढ़ाने और बनाए रखने की अपार संभावनाएं हैं।

कृषि वानिकी एवं रोजगार के अवसर

निम्न आय वाले परिवारों की निर्वाह आवश्यकताओं को पूरा करने और समाज की अधिक और निरंतर आजीविका के लिए कृषि वानिकी आवश्यक है। लकड़ी की आपूर्ति में वृद्धि की वजह से लकड़ी और लकड़ी आधारित लघु उद्योगों की संख्या में काफी वृद्धि हुई है। ऐसे उद्योग कृषि वानिकी को बढ़ावा देते हैं और कृषि वानिकी के बढ़ते क्षेत्र में योगदान करते हैं। कृषि वानिकी को एक व्यवहार्य उद्यम के रूप में मान्यता देते हुए, कई व्यावसायिक निगमों, कंपनियों जैसे आईटीसी, विमको, वेस्ट कोस्ट पेपर मिल्स लिमिटेड, हिंदुस्तान पेपर मिल्स लिमिटेड, और वित्तीय संस्थानों, जैसे इफको ने बड़े पैमाने पर व्यवसाय में प्रवेश किया है और किसानों के सहयोग से कृषि वानिकी गतिविधियों की शुरुआत की है। आजीविका के संदर्भ में कृषि वानिकी के प्रमुख योगदानों में से एक आय और रोजगार सृजन है।

कृषि वानिकी एवं चारा उत्पादन

पेड़ और झाड़ियाँ अक्सर शुष्क एवं अर्ध-शुष्क और पहाड़ी क्षेत्रों में पत्तियों के चारे की पर्याप्त मात्रा में योगदान करते हैं। पेड़ों की कटाई/छंटाई के माध्यम से, जो लोकप्रिय रूप से शीर्ष चारा के रूप में जाना जाता है। चारे की उपज प्रजातियों, प्रारंभिक आयु, लोपिंग तीव्रता और अंतराल के साथ-साथ कृषि-जलवायु स्थितियों पर निर्भर करती है। पेड़ों से चारा पत्ती की टहनियों और फलियों द्वारा प्रदान किया जाता है। यह चारा आमतौर पर प्रोटीन, विटामिन और कैल्शियम जैसे खनिजों से भरपूर एवं फॉस्फोरस और कच्चे फाइबर में सामान्य रूप से कम होता हैं। शीर्ष चारा एक पशु चारा संसाधन के रूप में कार्य के माध्यम से मानव खाद्य सुरक्षा में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। सूखे की गंभीरता और सूखे के मौसम की प्रगति के साथ शीर्ष चारा का महत्व भी बढ़ जाता है। अन्य उपयोग जैसे जीवित बाड़ लगाना, पूरक के रूप में कार्य करते हैं, क्योंकि वे प्रजातियों की खेती को प्रोत्साहित करते हैं और चारा की उपलब्धता में वृद्धि करते हैं। वनस्पति स्थिरीकरण और रेंजलैंड की निरंतर उत्पादकता में शीर्ष चारा को बहुत महत्वपूर्ण माना जाता है। वे हवा के झोंकों के रूप में और चरने वाले जानवरों के लिए छाया प्रदान करके भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। सबसे महत्वपूर्ण शीर्ष चारा प्रजातियां प्रोसोपिस सिनेरिया, एवं अल्बिजिया लेबेक हैं। बबूल स्पेसीज, ल्यूकेना ल्यूकोसेफला, डालबर्गिया सिसो, ऐलेन्थस एक्सेलसा, अजादिरक्टा इंडिका, बबूल ल्यूकोफोएला शुष्क और अर्ध-शुष्क क्षेत्रों के लिए और ग्रेविया ऑप्टिवा, मोरस अल्बा, सेल्टिस ऑस्ट्रेलिया पहाड़ी क्षेत्रों के लिए उपयोगी है। पेड़ का चारा पर्याप्त पोषक तत्व प्रदान करता है और हरे चारे के पूरक के रूप में बहुत अच्छी तरह से काम कर सकता है। इसके अलावा, कमी के दौरान चारा के पूरक के लिए पत्तियों को घास और साइलेज के रूप में भी संरक्षित किया जाता है।

कृषि वानिकी एवं जैव-ईंधन उत्पादन

भारत की आबादी के एक बड़े हिस्से की विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में, ऊर्जा के पारंपरिक स्रोत तक पहुँच नहीं है। पर्यावरणीय गिरावट, ऊर्जा सुरक्षा, और आयात पर प्रतिबंध, ग्रामीण रोजगार और कृषि अर्थव्यवस्था में सुधार की समस्याओं के समाधान के रूप में जैव ईंधन दुनिया भर में स्वीकृति प्राप्त कर रहे हैं। जैव ईंधन के रूप में संभावित पेड़ों में *जेट्रोफा करकस, पोंगामिया पिनाटा, सिमरौबा, अजाडिरक्टा इंडिका, मधुका स्पेसीज* आदि शामिल हैं। कृषि वानिकी में इन्हें लोबिया, तिल, सूरजमुखी, फ्रेंच बीन, उड़द, मूंग और मूंगफली जैसी वार्षिक फसलों के साथ जोड़ा जा सकता है। तिलहनी फसलों को बढ़ावा देने से ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी उन्मूलन का विकल्प भी मिलता है, क्योंकि इन पेड़ों के लिए खाली बेकार और सीमांत भूमि का उपयोग वार्षिक उपज और आय प्रदान करने के लिए किया जा सकता है। हरित आवरण बढ़ने से पर्यावरण को भी लाभ होगा। ये तिलहनी फसलें ग्रीन हाउस प्रभाव को कम करते हैं। भारत में जैव ईंधन का प्रमुख स्रोत अखाद्य तिलहन यानी वृक्ष जनित तिलहन (टीबीओ) है। राष्ट्रीय तिलहन और वनस्पति तेल विकास बोर्ड, गुड़गाँव (भारत) के अनुसार देश में टीबीओ की आवश्यकता 5 मिलियन टन से अधिक है। हालांकि, विभिन्न प्रजातियों से केवल 0.8-1.0 मिलियन टन एकत्र किया जा रहा है, जैसे नीम (*अजाडिरक्टा इंडिका*), करंज (*पोंगामिया पिनाटा*), महुआ (*मधुका लोंगिफोलिया*), जेट्रोफा (*जेट्रोफा करकस*), कुसुम (*श्लीचेरा ओलियोसा*), पीलू (*सल्वाडोरा ओलियोइड्स*), भीकल (*प्रिंसेपिया यूटिलिस*), उंडी (*कैलोफिलम इनोफिलम*), सिमरौबा ग्लौका, साल (*शोरिया रोबस्टा*) और जोजोबा (*साइमंड्सिया चिनेंसिस*) है। कुछ टीबीओ प्रजातियों को अपेक्षाकृत प्रतिकूल पर्यावरणीय परिस्थितियों में बंजर भूमि में उगाया जा सकता है और ऐसी ही प्रजातियों को बढ़ावा दिया जाना चाहिए। वे बंजर भूमि के पुनर्वास और एक ऊर्जा विकल्प प्रदान करने के दोहरे उद्देश्यों को पूरा करते हैं। हालांकि, अभी भी बीज और तेल की पैदावार बढ़ाने के लिए आनुवंशिक सुधार पर शोध की आवश्यकता है।

कृषि वानिकी एवं जैव-ऊर्जा

ग्रामीण क्षेत्रों में 70-80 प्रतिशत ऊर्जा पेड़ों और झाड़ियों से बायोमास के माध्यम से आती है। कृषि वानिकी पहल के कारण, अब बड़ी मात्रा में लकड़ी का उत्पादन पारंपरिक वनभूमि के बाहर से किया जा रहा है। छोटे जोत और सीमांत किसान, लघु रोटेशन वानिकी और कृषि वानिकी प्रथाओं के माध्यम से अब देश के घरेलू स्तर पर उत्पादित लकड़ी के उत्पादों का बड़ा हिस्सा उपलब्ध करा रहे हैं। *प्रोसोपिस जूलीफ्लोरा* बिजली उत्पादन संयंत्रों के लिए ईंधन का प्रमुख स्रोत है। स्वदेशी (*बबूल नीलोटिका, अजादिरक्टा इंडिका, कैसुरिना इक्विसेटिफोलिया, डालबर्गिया सिसो, प्रोसोपिस सिनेरिया* और *जिजिफस मॉरिटियाना*) और विदेशी (*बबूल ऑरिकुलीफ मिंस, एटॉर्टिलिस, यूकेलिप्टस कैमलडुलेंसिस* और *ई. टेरेटिकोर्निस*) वृक्ष प्रजातियों के लिए उपयोगी है। *सी. इक्विसेटिफोलिया, प्रोसोपिस जूलिफ्लोरा, ल्यूसेना ल्यूकोसेफला* और *कैलियांड्रा कैलोथायरस* जैसी प्रजातियां उच्चतम दक्षता की लकड़ी, ऊर्जा प्रदान करने की क्षमता, एक छोटे रोटेशन और विविध आवासों और जलवायु के लिए उच्च अनुकूलन क्षमता के कारण प्रमुख हो गई हैं। इस संबंध में सामुदायिक भूमि पर कृषि वानिकी वृक्षारोपण और खेत की सीमाओं पर लाइव बाड़ की अपार संभावनाएं हैं। बायोमास आधारित बिजली संयंत्रों के लिए भी एक विकल्प है, जहाँ बिजली उत्पादन एक अन्य विकल्प के रूप में फसल/पौधे के अवशेषों का उपयोग कर सकता है।

कृषि वानिकी हेतु वृक्षों का चुनाव

कृषिवानिकी के लिए वृक्षों के चयन (मानचित्र-3) में निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए।

1. **शीघ्र बढ़ने वालेः** कृषि वानिकी के अन्तर्गत ऐसे वृक्षों का चयन करना चाहिये जो बहुत तेज गति से बढ़ने वाले हों, जिससे कृषक कम समय में ही अधिक उपज प्राप्त कर सके।
2. **सीधे तने वालेः** कृषि वानिकी में रोपण हेतु सीधे तने, कम शाखाओं, विरल छत्र व शाख तराशी सहने वाली वृक्ष प्रजातियों को चयन में प्राथमिकता दी जानी चाहिए।
3. **गहरी जड़ो वालेः** कृषि वानिकी में लम्बी जड़ों वाले वृक्षों को उगाना बहुत लाभदायक होता है। ये जड़े भूमि में जाकर नीचे से पोषक तत्व ऊपर लाती हैं जो कृषि की फसलों को फायदा पहुँचाते है। वृक्षों की मूसला जड़ों की बढ़त इस प्रकार हो कि जल व खनिज लवणों के अवशोषण व फसलों की आवश्यकता के साथ सामंजस्य स्थापित कर सके।

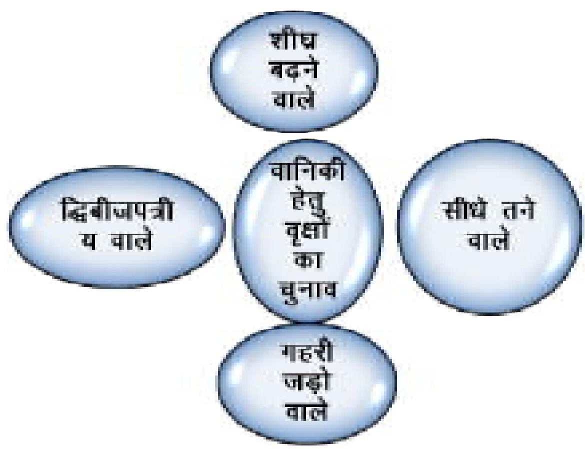

मानचित्र-3ः कृषि वानिकी हेतु वृक्षों का चुनाव

4. **द्विबीज पत्रीय वालेः** कृषि वानिकी के अन्तर्गत द्विदलीय बीजपत्र वाले वृक्ष उगाना अधिक लाभकारी होते है, क्योंकि ऐसे वृक्ष भूमि में नाइट्रोजन जमा करते हैं, जो कि कृषि की फसलों द्वारा इस्तेमाल किया जाता है।

कृषि-वानिकी एवं औद्योगिकीकरण

हमारे देश में अनेक उद्योग-धंधे वृक्षों व वानस्पति सम्पदा पर निर्भर हैं, जिन्हें यह कच्चा माल प्रदान करते हैं। भारतवर्ष में वृक्षों द्वारा उत्पादित लकड़ी का अधिकांश भाग ईंधन के लिए उपयोग किया जाता है। कृषि-वानिकी में फसलों-चारे के साथ-साथ पेड़ों इत्यादि को उगाने से खाद्यान एवं पशुओं की जरूरतों के आलावा लकड़ी की भी आपूर्ति हो जाती है। कृषि-वानिकी प्रणाली के अंतर्गत वृक्षों पर आधारित अनेक औद्योगिक इकाईयां मानव को रोजगार प्रदान करने के साथ-साथ उनकी आवश्यकताओं की भी पूर्ति करती है। कृषि-वानिकी से सम्बन्धित प्रमुख उद्योग व इन उद्योग-धंधों में काम आने वाले वृक्षों व वनस्पतियों को मानचित्र4 में दर्शाया गया है।

कृषि वानिकी की पद्धतियां

कृषि वानिकी में अनेक पद्धतियां प्रचलित हैं- 1. कृषि-वन पद्धति 2. कृषि-उद्यानिकी- वन चरागाह पद्धति 3. कृषि उद्यानिकी पद्धति 4. उद्यान-चारा पद्धति 5. वन-चरागाह पद्धति 6. कृषि-वन -चरागाह पद्धति। इन सभी प्रणालियों का उद्देश्य भूमि का समुचित उपयोग एवं प्रबन्धन है। इन पद्धतियों द्वारा फलदार वृक्ष/चारा, खाद्यान्न एवं ईंधन की प्राप्ति के साथ-साथ विभिन्न प्रकार की सब्जियाँ एवं इमारती लकड़ियाँ भी मिलती है।

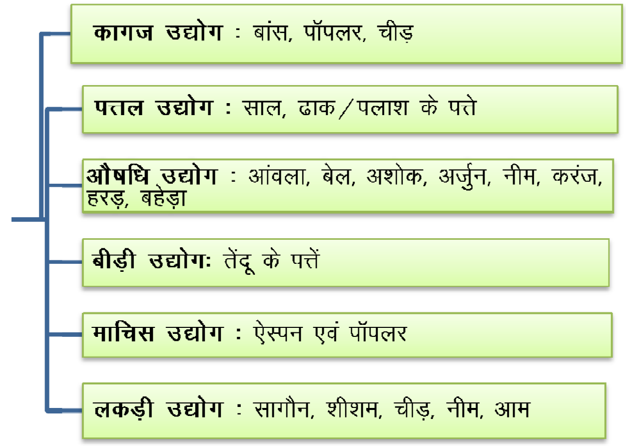

मानचित्र-4ः कृषि-वानिकी से सम्बन्धित प्रमुख उद्योग

कृषि वानिकी (पॉपलर ई.टी.पी.) योजना 2022 की शुरुआत बिहार राज्य सरकार के द्वारा की गयी है। योजना के तहत किसानों तक लाभ पहुँचाया जायेगा। योजना के माध्यम से किसान वानिकी योजना से जुड़कर विभिन्न प्रकार की प्रजातियों के पौधो को कम मूल्य में अपने खेतो में लगा सकते है, जिससे किसानों को अधिक से अधिक लाभ प्राप्त हो सकेगा। कृषि वानिकी (पॉपलर ई.टी.पी.) योजना को पर्यावरण वन और जलवायु को सुरक्षित रखने के उद्देश्य से शुरू किया गया है। योजना के माध्यम से किसानों की आर्थिक स्थिति में भी सुधार किया जायेगा। कृषि वानिकी योजना में शामिल होने वाले सभी किसानों को योजना के तहत दस रूपए मूल्य के हिसाब से एक पौधा दिया जायेगा। जिससे पॉपलर के पौधे तैयार होंगे।

कृषि वानिकी की पद्धतियाँ

पद्धति	वृक्षों के साथ फसलों का समायोजन
1. कृषि-वन (फसलें ईंधन/चारे वाले पेड़)	**खरीफ फसलेंः** मक्का, तिल, संकर बाजरा, ज्वार, अरहर, मूंग, उरद, लोबिया **रबी फसलेंः** गेहूँ, जौ, चना, चना, मंसूर, सरसों और अलसी **वृक्षः** सागौन, शीशम, महोगनी, क्लोनल यूकेलिप्टस, सहजन, देशी बबूल, नीम, सीरिस, बबूल, बांस, महुआ, प्लास, आसन धौ, करधई, इजरायली कीकर, सागौन आदि।
2. कृषि-उद्यानिकी-वन चरागाह (फसलें फल ईंधन वाले पेड़)	**फसलेंः** मूंग, उड़द, तिल, ग्वार **वृक्षः** बेर, शहतूत, जामुन, कटहल, महुआ, आवँला, खेजड़ी, इजरायली कीकर, सागौन
3. कृषि उद्यानिकी (फसलें सब्जियां औषधीय फलदार पेड़)	**वृक्षः** अनार, किन्नू, कागजी नींबू, मौसमी, आम, बेल, बेर, आँवलां, अमरूद, चिरौजी, करौंदा, इमली आदि **फसलेंः** तिल, सरसो, अलसी, जौ, गेहूँ, चना, मटर, मसूर आदि। **सब्जीः** धनिया, मिर्च, बैंगन, टमाटर, भिण्डी, फूलगोभी, तोरई, लौकी, करेला, हल्दी, अदरक, सूरन आदि। **औषधीय व मसाले पौधेः** जीरा, सौंफ, अजवाइन, सतावर, सर्पगंधा, अश्वगंधा, कालमेघ, सफेद मुसली आदि।
4. उद्यान-चारा (फलदार पेड़चारे वाली घासें)	**फलदार वृक्षः** बेर, बेल, अमरूद, जामुन, शरीफा, आंवला इत्यादि। **चारे वाली घासेंः** अंजन, हाथी घांस, मार्बल, स्टाइलो, क्लाइटोरिया इत्यादि।
5. वन-चरागाह (चारे वाले पेड़चारे वाली घासें)	**चारे वाले पेड़ः** अगस्ती, खेजड़ी, सिरस, नीम, बकाइन इत्यादि। चारे वाली घासेंः अंजन घास, स्टाइलो और क्लाइटोरिया
कृषि-वन-चरागाह (फसलें पेड़चारागाह)	**फसलेंः** तिल, मूंगफली, बाजरा, मूंग, उड़द, लोबिया **बहुउद्देश्यीय वृक्षः** रामकाटी, केजुएरीना, बकाइन, बांस, शीशम, करधई, धौ, सुबबूल, विलायती बबूल, अंजन बबूल, कैर, सीरिस, पाकड़ आदि। **घासेंः** धवलू, लम्पा, सेन, अंजन घास, पैराघास, नैपियर घास, वनकुल्थी, सिराट्रो एवं स्टाइलो आदि।

कृषि वानिकी (पॉप्लर ई.टी.पी.) योजना 2022

कृषि वानिकी (पॉपलर ई.टी.पी.) योजना की मुख्य बातें

योजना का नाम	कृषि वानिकी (पॉपलर ई.टी.पी.) योजना
लाभ	किसानों की आमदनी में वृद्धि
लाभार्थी	बिहार राज्य के किसान
योजना शुरू की गयी	बिहार राज्य सरकार के द्वारा
उद्देश्य	राज्य के किसानों को आर्थिक मजबूती प्रदान करना
साल	2022
आधिकारिक वेबसाइट	forestonline-bih-nic-in

कृषि वानिकी की दिशा में इस प्रकार के प्रयास भारत में राज्य की प्रत्येक सरकार द्वारा किए जाने चाहिए।

कृषि-वानिकी के अंगीकरण से संबद्ध समस्याएँ

भारत में कृषि वानिकी को अपनाने में निम्नलिखित समस्याएं हैं।

1. **किसानों के बीच सूचनाओं का अभावः** हालाँकि कृषि-वानिकी भारत में अज्ञात नहीं है, कई किसान वृक्षों के रोटेशन और परिपक्व वृक्षों के व्यापार संबंधी कानूनी पहलुओं के बारे में जानकारी की कमी के कारण इसे अपनाने को इच्छुक नहीं हैं।
2. **कृषि-वानिकी का अस्पष्ट वर्गीकरणः** कृषि-वानिकी एक अपेक्षित आंदोलन का स्वरूप ग्रहण नहीं कर सका है। लंबे समय तक यह विषय 'कृषि' और 'वानिकी' के बीच की दरार में झूलता रहा जहाँ दोनों ही क्षेत्रों का इस पर प्राधिकार नहीं था। राष्ट्रीय प्रणाली में कृषि-वानिकी का मूल्य और दर्जा अस्पष्ट और लगभग उपेक्षित ही बना रहा है। प्रतिकूल नीतियों और कानूनी अड़चनों के कारण इस पर कम ध्यान दिया गया।
3. **वित्तीय बाधाएँः** इस क्षेत्र में अपर्याप्त निवेश भी उपेक्षा का एक कारण है। फसल क्षेत्र के लिये उपलब्ध ऋण और बीमा उत्पादों के विपरीत, खेतों में पेड़ उगाने के लिये न्यूनतम प्रावधान मौजूद हैं। कमजोर विपणन अवसंरचना, मूल्य खोज तंत्र की अनुपस्थिति और फसल कटाई के बाद की प्रसंस्करण प्रौद्योगिकियों की कमी ने स्थिति को और अधिक जटिल बना दिया है।
4. **लघु और सीमांत कृषि-भूमिः** अधिकांश किसान लघु और सीमांत हैं जिनके पास छोटे खेत हैं (2 हेक्टेयर से कम)। इस परिदृश्य में आर्थिक रूप से और स्थानिक रूप से कृषि-वानिकी अव्यवहार्य है।

कृषि वानिकी को बढ़ावा कैसे दिया जाये?

भारत में कृषि वानिकी को बढ़ावा निम्न प्रकार से दिया जा सकता हैं।

1. कृषि वानिकी क्षेत्र को उपयोगिता दृष्टिकोण के परिप्रेक्ष्य से संस्थागत रूप से मजबूत और स्पष्ट चिन्हित किये जाने की आवश्यकता है जो खेत-वानिकी, पर्यावरण संरक्षण और सतत विकास को समाहित करता हो।
2. केवल अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के किसानों के बजाय सभी छोटे भूमिधारकों को वित्तीय सहायता भी प्रदान की जानी चाहिये। प्रोटोकॉल विकसित करने की आवश्यकता है जहाँ छोटे भूमिधारक कार्बन ट्रेडिंग के माध्यम से आय अर्जित कर सकते हों। दीर्घावधि वित्तपोषण चक्र के साथ संस्थागत ऋण, ब्याज स्थगन और कृषि-वानिकी के लिये उपयुक्त बीमा उत्पादों को भी अभिकल्पित किया जाना चाहिये। निजी क्षेत्र को भी कृषि-वानिकी में एक वाणिज्यिक उद्यम के रूप में, साथ ही 'कार्पोरेट सामाजिक उत्तरदायित्व' के माध्यम से निवेश करना चाहिये।
3. वृक्ष आधारित खेती और मूल्य श्रृंखला विकास के विस्तार को बढ़ावा देने के लिये क्षमता निर्माण हेतु किसान समूहों, सहकारी समितियों, स्वयं सहायता समूहों, किसान-उत्पादक संगठनों, को प्रोत्साहित किया जाना चाहिये। कम से कम 10 प्रतिशत कृषि भूमि को वृक्ष आच्छादित करने का लक्ष्य रखना चाहिये।
4. कृषि-वानिकी की वर्तमान स्थिति प्रतिकूल कानूनों में संशोधन और वानिकी एवं कृषि से संबंधित विनियमों को सरल बनाने की मांग रखती है। नीति-निर्माताओं को भूमि उपयोग और प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन से संबंधित सभी नीतियों में कृषि-वानिकी को शामिल करना चाहिये और कृषि-वानिकी संबंधी अवसंरचना में सरकारी निवेश तथा स्थायी उद्यमों की स्थापना को प्रोत्साहित करना चाहिये।
5. **वैज्ञानिक और शोधकर्ता स्थान विशिष्ट वृक्षः** आधारित प्रौद्योगिकियाँ विकसित करे जोकि संवहनीय आजीविका के लिये फसल और पशुधन प्रणालियों को पूरकता प्रदान करे, लैंगिक चिंताओं को संबोधित करे और स्थानीय समुदायों के विचारों को इसमें शामिल करे।

कृषि वानिकी, खाद्य सुरक्षा और पोषण

राम प्रकाश यादव, प्रभात तिवारी, राकेश कुमार एवं एम. जे. डोबरियाल

रानी लक्ष्मी बाई केंद्रीय कृषि विश्वविद्यालय, झाँसी 284003 (उ.प्र.)

ई मेलः rams34052@gmail.com

सारांश

कुपोषण एक प्रमुख वैश्विक चुनौती है, कम से कम दुनिया के उन हिस्सों में जो गरीबी से पीड़ित हैं। साथ ही, जलवायु संकट और अन्य पर्यावरणीय परिवर्तन विश्व के दक्षिण में लोगों को असमान रूप से प्रभावित करते हैं। अधिक टिकाऊ और लचीलापन खाद्य उत्पादन प्रणालियों के माध्यम से योगदान करते हुए कृषि वानिकी को बढ़ाना खाद्य और पोषण सुरक्षा में योगदान कर सकता है। यह खाद्य सुरक्षा और पोषण के लिए कृषि वानिकी की भूमिका पर केंद्रित है, जिसमें लैंगिक समानता और स्वदेशी और स्थानीय ज्ञान और पारंपरिक फसल किस्मों की मान्यता शामिल है।

प्रस्तावना

आज, कुपोषण दुनिया के हर देश को प्रभावित कर रहा है। फूड एण्ड एग्रीकल्चरल आर्गेनाइजेशन (2019) के अनुसार 2000 के पहले दशक के दौरान अल्पपोषण और सूक्ष्म पोषक तत्वों (खनिज और विटामिन) की कमी में कमी आई लेकिन 2015 के बाद से फिर से वृद्धि हुई है। इस बीच, अधिक वजन और मोटापे में नाटकीय रूप से वृद्धि हुई है, जिसके परिणामस्वरूप गैर-संचारी रोगों में वृद्धि हुई है। फूड एण्ड एग्रीकल्चरल आर्गेनाइजेशन (2019) का अनुमान है कि दुनिया में लगभग 820 मिलियन से अधिक लोग भूख से पीड़ित हैं। विकशील देशों में विविध और पौष्टिक भोजन के उत्पादन और उन तक पहुँचने के लिए कई बाधाओं जैसे पानी की कमी, मिट्टी की उर्वरता की हानि और वनों की कटाई की वजह से बढ़ जाता है। इसके अलावा, कई छोटे जोत वाले किसान आणथक विकास में मंदी का सामना कर रहे हैं। संकट के समय में, सस्ते और ऊर्जा से भरपूर-लेकिन कम पोषक तत्वों वाले- प्रधान खाद्य पदार्थों के उत्पादन पर बढ़ते ध्यान से खाद्य विविधता अक्सर नकारात्मक रूप से प्रभावित होती है, जिससे खाद्य असुरक्षा और कुपोषण बढ़ जाता है।

खाद्य प्रणालियों से उत्पादित स्वस्थ आहार का पर्याप्त मात्रा में पौष्टिक भोजन लोगों को उपलब्ध कराना अत्यावश्यक है क्योंकि फूड एण्ड एग्रीकल्चरल आर्गेनाइजेशन (2019) के अनुसार 2050 तक दुनिया की मानव आबादी 10 अरब लोगों तक पहुँचने का अनुमान है। साथ ही वैश्विक खाद्य उत्पादन वैश्विक जलवायु और पर्यावरण परिवर्तन के मुख्य चालकों में से एक है। खाद्य उत्पादन प्रणालियों के पर्यावरणीय प्रभाव को कम करने के साथ-साथ कुपोषण के सभी रूपों को कम करने के लिए खाद्य उत्पादन विधियों और खपत के स्वरूप दोनों में पर्याप्त बदलाव की आवश्यकता है। कृषिवानिकी एक ऐसी कृषि पद्धति है जो अपर्याप्त खाद्य उत्पादन को पूरक कर सकती है एवं फसल उत्पादन और पशुपालन के लिए उपयोग की जाने वाली भूमि पर पेड़ों और झाड़ियों को एकीकृत करके मौजूदा कृषि प्रणालियों में जैव विविधता को बढ़ा सकती है। यह कोई नई प्रथा नहीं है पूरे मानव इतिहास में पेड़ों और फसलों को मिलाना आम बात है। कृषिवानिकी वनों की कटाई और भूमि क्षरण को कम करने, जलवायु परिवर्तन का मुकाबला करने, जैव विविधता को बढ़ावा देने और जल विनियमन और मिट्टी की उर्वरता जैसी कई पारिस्थितिकी तंत्र सेवाओं का समर्थन करने में योगदान करती है। इसके अलावा, कृषिवानिकी कृषि के लचीलापन को बढ़ाती है, छोटे

नीम आधारित कृषि वानिकी में दालों और मटर की अंतरफसल

किसानों को अधिक विश्वसनीय आजीविका प्रदान करती है और संकट के समय में कमजोर समूहों के लचीलेपन को मजबूत करती है। आईपीसीसी ने कृषिवानिकी के लाभों को वैश्विक नीति और बड़ी संख्या में अन्तर्राष्ट्रीय आकंलन और वैज्ञानिक अध्ययनों में मान्यता दी गई है।

फलों के पेड़ों का विकास

वैश्विक स्तर पर उत्पादित फलों का लगभग ७४ प्रतिशत पेड़ों से काटा जाता है। कृषि वानिकी में एकीकृत फलों के पेड़ विभिन्न प्रकार के स्वस्थ पोषक तत्वो से भरपूर घने खाद्य पदार्थों की साल भर की फसल प्रदान कर सकते हैं। विश्व के कई हिस्सों में, हालांकि, फल उत्पादन और खपत अपर्याप्त और अक्सर मौसमी होती है।

विश्व कृषि-वानिकी संस्थान (आईसीआरएएफ) ने 'फल वृक्ष पत्र' बनाने का एक तरीका विकसित किया है, जो किसानों के साथ साझेदारी में, स्थानीय उत्पादन के लिए सबसे उपयुक्त प्रजातियों की पहचान करता है। इस पत्र को स्थानीय खाद्य प्रणालियों में फलों के एकीकरण को बढ़ावा देने और मौसमी उपलब्धता की चुनौती को कम करने के लिए विकसित किया है। स्थानीय खपत की जरूरतों को पूरा करने के लिए सामाजिक-पारिस्थितिक रूप से उपयुक्त और पोषण की दृष्टि से महत्वपूर्ण फलों के पेड़ की प्रजातियों पर ध्यान केंद्रित किया जाता है, और इसमें खेतों पर फलों के पेड़ की प्रजातियां शामिल हैं। इसमें मौसमी खेत के फलों के पेड़ों की विविधता का मानचित्रण करना, और घरों के आहार अंतर, भोजन की खपत के के स्वरूप और खाद्य असुरक्षा के महीनों की पहचान करना शामिल है। इन मापदंडों का उपयोग करते हुए, सूक्ष्म पोषक तत्वों के प्रबंधन के लिए फलों के पेड़ की प्रजातियों को बढ़ावा देने के लिए संदर्भ-विशिष्ट सिफारिशें विकसित की जाती हैं।

फलों के पेड़ पर आधारित कृषि वानिकी में दलहन और अनाज की अंतरफसल

कृषि वानिकी के साथ बेहतर पोषण और आहार विविधता

जलवायु परिवर्तन अन्तर्राष्ट्रीय संस्था (आईपीसीसी) के अनुसार आज की खाद्य उत्पादन प्रणाली सैद्धांतिक रूप से दुनिया में सभी को खिलाने के लिए प्रति व्यक्ति पर्याप्त कैलोरी प्रदान कर सकती है। हालांकि, हर किसी की स्वास्थ्य आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए पर्याप्त सूक्ष्म पोषक तत्वों के साथ स्वस्थ आहार तक पहुँच एक चुनौती है। कृषि-वानिकी में पौष्टिक फसलों, फलों, नट्स और पत्तियों के उत्पादन और उपलब्धता में वृद्धि के माध्यम से आहार के विविधीकरण में योगदान करने की क्षमता है। सामान्य तौर पर, सभी महाद्वीपों के लोगों को चावल, गेहूँ और मक्का जैसे मुख्य खाद्य पदार्थों के पूरक के रूप में फलों, नट्स, साबुत अनाज, फलियाँ और सब्जियों का सेवन बढ़ाने की आवश्यकता होती है। कई पौष्टिक लेकिन वर्तमान में कम उपयोग वाले खाद्य पदार्थों का उत्पादन किया जा सकता है और संभावित रूप से कृषि वानिकी प्रणालियों के माध्यम से प्रचारित किया जा सकता है।

खाद्य असुरक्षा और कुपोषण से निपटने के लिए खाद्य गुणवत्ता पर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है, उदाहरण के लिए कृषि वानिकी और अन्य कृषि संबंधी दृष्टिकोण जैसे विविध उत्पादन प्रणालियों को बढ़ावा देना। खाद्य पदार्थों के उत्पादन को बढ़ावा देने वाली नीतियों को संशोधित करने की आवश्यकता है, जिसमें पोषक उत्पादों को उत्पादित करने पर जोर दिया जाए, उदाहरण के लिए उन फसलों के उत्पादन को बढ़ावा देना जो पोषक तत्वों में उच्च हैं और न केवल उपज में उच्च हैं ।

परंपरागत रूप से खेती की जाने वाली फसल प्रजातियाँ और किस्में, उच्च उपज वाली फसलों की तुलना में अक्सर पोषक तत्वों, रेषा और प्रोटीन में समृद्ध होती हैं। इस तरह की देशी किस्मों को स्थानीय स्वदेशी समुदायों द्वारा लंबे समय से जंगलों से काटा गया है, लेकिन कई जगहों पर इस प्रथा को अब वनों की कटाई के साथ-साथ किसानों की प्राथमिकताओं और विपणन योग्य माना जाता है। कृषि वानिकी एक ऐसा मार्ग प्रदान करती है जहाँ स्थानीय ज्ञान और इन प्रजातियों और किस्मों के प्रबंधन को बहाल किया जा सकता है और अन्य फसलों के उत्पादन के साथ जोड़ा जा सकता

है। उदाहरण के लिए, स्वदेशी फलों के पेड़ों का रोपण, फलों के उच्च पोषण मूल्य के कारण तेजी से फायदेमंद माना जाता है और विशेष रूप से बच्चों द्वारा उनको पसंद किया जाता है।

उन्नत जैव विविधता और पोषण के अलावा, कृषि वानिकी किसानों के लिए उच्च पैदावार और अधिक विविध आजीविका में भी योगदान दे सकती है। जबकि एक ही फसल पर निर्भर रहने से खाद्य असुरक्षा और एकल आय से कमआय का खतरा बढ़ जाता है, फसलों की विविधता अधिक पौष्टिक आहार प्रदान कर सकती है, मुख्य फसलों की कटाई के बीच भूख की खाई को कम कर सकती है, और अधिक स्थिर आय अणजत करने के अवसर पैदा कर सकती है। इसके अलावा, पेड़ों की गहरी और व्यापक जड़ें उन्हें वाणषक फसलों की तुलना में सूखे के प्रति अधिक सहिष्णु बनाती हैं, जिसका अर्थ है कि वे शुष्क अवधि में भोजन प्रदान कर सकते हैं जब भोजन के अन्य स्रोत उपलब्ध नहीं होते हैं। जानवरों के लिए बेहतर चारे के उत्पादन के कारण कृषि-वानिकी ने पशुधन के स्वास्थ्य में सुधार कर सकती है, जिसके परिणामस्वरूप दूध उत्पादन में वृद्धि हुई है। इस प्रकार, कृषि वानिकी प्रणाली प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से खाद्य सुरक्षा में योगदान कर सकती है और भूख और गरीबी से लड़ने में मदद कर सकती है।

होमगार्डन (गृहवाटिका)

होमगार्डन (गृहवाटिका) छोटे जोत वाले खेत मे कृषिवानिकी का एक प्रकार हैं जिसमें फसल, फल और लकड़ी का उत्पादन होता है, जहाँ परिवार के आवास के पास कई परतों में पेड़ों और फसलों की विविधता उगाई जाती है। शोधकर्ताओं के समीक्षा पत्रों से पता चलता है कि होमगार्डन कम लागत पर, विशेष रूप से गरीबी में रहने वाले लोगों के लिए, कई पारिस्थितिक तंत्र सेवाओं को बनाए रखते हुए और जलवायु लाभों को बढ़ावा देते हुए, जैसे कि उपजाऊ मिट्टी, जल विनियमन और कार्बन पृथक्करण आदि, साल भर के भोजन और पोषण सुरक्षा कर सकते हैं। सरकारी कार्यक्रमों के माध्यमों से खाद्य और पोषण सुरक्षा का समर्थन करने के लिए होमगार्डन को बढ़ावा दने की जरूरत हैं, जलवायु शमन और अनुकूलन लक्ष्यों तक पहुँचने में भी मदद् करते हैं। राष्ट्रीय खाद्य उत्पादन कार्यक्रम में स्थानीय खाद्य उत्पादन पर जोर देना और लोगों को अपने घर के आसपास में सब्जियां और पेड़ उगाने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए।

दुनिया भर में इसी तरह की कृषि वानिकी प्रथाएं उभर रही हैं। फिर भी, लिंग, जल प्रबंधन और व्यावसायीकरण आदि के क्षेत्र

चारे के पेड़ आधारित कृषि वानिकी में हल्दी की अंतर-फसल

घर के आसपास फसलों, चारे और फलों के मिश्रित वृक्षारोपण

में ज्ञान अंतराल बना हुआ है और नीतिगत निर्णय अक्सर ठोस शोध सत्यापन पर ही लिए जाने चाहिए। शोधकर्ताओं के निष्कर्ष के अनुसार है होमगार्डन की पूरी क्षमता तक पहुँचने के लिए, स्थायी जल और अपशिष्ट प्रबंधन के लिए तकनीकों का अध्ययन पोषण और कम उपयोग वाली प्रजातियों के बारे में ज्ञान के साथ खेत के स्तर पर आवश्यक है। साथ ही, नीति के माध्यम से किसानों को छोटे पैमाने के व्यवसाय बनाने और दीर्घकालिक योजना में संलग्न करने के लिए एक सक्षम वातावरण प्रदान करने की आवश्यकता है।

लिंग, खाद्य सुरक्षा और पोषण

विश्व स्तर पर, पाँच साल से कम उम्र के बच्चों में होने वाली मौतों में माताओं और बच्चों के बीच कुपोषण का योगदान 45 प्रतिषत है। फूड एण्ड एग्रीकल्चरल आर्गेनाइजेशन (2019) के अनुसार मामलों को बदतर बनाने के लिए, मातृ कुपोषण, जन्म के समय कम वजन और बचपन के दौरान बौने विकास से वयस्कता में अधिक वजन होने का खतरा बढ़ जाता है।

विकासशील देशों में ग्रामीण महिलाओं को अक्सर अत्यधिक पौष्टिक वन उत्पादों की पहचान, संग्रह और उत्पाद बनाने का गहरा ज्ञान होता है जो कृषि के महत्वपूर्ण पूरक हैं। विशिष्ट प्राकृतिक संसाधनों के ज्ञान में लिंग अंतर को भूमिकाओं और जिम्मेदारियों के पारंपरिक लिंग-संबंधी विभाजन के लिए जिम्मेदार ठहराया जाता है। महिलाओं को अक्सर वन पारिस्थितिकी का अत्यधिक विशिष्ट ज्ञान होता है, जिसमें संरक्षण प्रथाओं के साथ-साथ पेड़ों और गैर-लकड़ी उत्पादों के विभिन्न उपयोग शामिल हैं। बच्चों के लालन-पालन की मुख्य जिम्मेदारी के साथ, महिलाओं को प्रजातियों के भोजन और औषधीय मूल्यों पर अधिक ध्यान देने और अधिक जागरूक होने के रूप में जाना जाता है। विभिन्न प्रजातियों, मिट्टी की उर्वरता और प्रबंधन के बारे में उनका ज्ञान स्थानीय रूप से अनुकूलित कृषि वानिकी प्रणालियों के बनावट और रखरखाव के आधार के रूप में काम कर सकता है।

कृषि वानिकी प्रयासों में महिलाओं के समावेश और सशक्तिकरण से पोषण, स्वास्थ्य और खाद्य सुरक्षा में सुधार हो सकता है और इस प्रकार स्थानीय समुदायों को लाभ हो सकता है। खेतों के बीच निश्चित रूप से अंतर होता है, और पुरुषों और महिलाओं दोनों के पास समृद्ध ज्ञान और कौशल है, लेकिन कुछ लिंग-संबंधी के स्वरूपों को कृषिवानिकी से संबंधित देखे जा सकते हैं। पुरुष अक्सर व्यावसायिक कारणों से कृषि वानिकी में अधिक रुचि रखते हैं, जबकि महिलाएं परिवार की जरूरतों को प्राथमिकता देती हैं और स्वास्थ्य, स्वच्छता एवं शिक्षा में अधिक निवेश करती हैं।

महिलाओं को अक्सर वन और कृषि संसाधनों तक पहुँच और नियंत्रण के साथ-साथ वित्तीय संसाधनों तक पहुँच से वंचित रखा जाता है। इसलिए, महिलाओं की बढ़ती भागीदारी और सशक्तिकरण महत्वपूर्ण महत्व रखता है। यदि पुरुषों के समान संसाधन दिए जाएं, तो महिला लघुधारक किसान अपनी पैदावार को 20-30 प्रतिशत तक बढ़ा सकते हैं, और इस प्रकार संभावित रूप से कुपोषित लोगों की संख्या को कम कर सकते हैं।

सिफारिशें

- मौसमी खाद्य जरूरतों को पूरा करने, अधिक पौष्टिक खाद्य पदार्थों की उपलब्धता बढ़ाने और कृषि अनुकूल क्षमता बढ़ाने के लिए एकल फसल प्रणालियों के बजाय कृषि वानिकी और अन्य विविध उत्पादन प्रणालियों के विकास का समर्थन करें।
- पोषण और विभिन्न क्षेत्रों में काम करके, ऐसी प्रणालियां बनाना जिसमें कृषि-संस्कृति एवं पोषण संबंधी परिणाम केन्द्र में हों ।
- मात्रा उत्पादन से गुणवत्ता और पोषण सामग्री पर ध्यान केंद्रित करने को बढ़ावा देना, उत्पादकों को पौष्टिक खाद्य फसलों और पेड़ लगाने के लिए प्रोत्साहित करना ।
- उन्नत खाद्य और पोषण सुरक्षा के लिए कृषि वानिकी में महिलाओं की भागीदारी और सशक्तिकरण की वकालत करना।
- स्थानीय ज्ञान, वरीयताओं, जरूरतों और बाधाओं के अनुकूल क्षेत्र-विशिष्ट तकनीकें विकसित करना ।
- समर्थन प्रलेखन और स्थानीय ज्ञान के पुनरोद्धार और कृषि-वानिकी के लिए स्वदेशी प्रजातियों और किस्मों को बढ़ावा देना (प्रसार के लिए सामग्री/जीन बैंक सहित)।
- उत्पादित भोजन की खपत को प्रोत्साहित करने के लिए फलों और नट्स के पोषण मूल्यों सहित उपलब्ध ज्ञान का व्यावहारिक दिशा-निर्देशों, व्यंजनों आदि का क्षेत्रीय भाषा में अनुवाद करें ।
- कृषि वानिकी और अन्य कृषि-पारिस्थितिकी दृष्टिकोण जैसे एकीत समाधानों के लिए अनुसंधान निधि में वृद्धि करें, जिसमें भागीदारी और किसान नेतृत्व वाले अनुसंधान जैसे-पोषण, जलवायु, आजीविका और पर्यावरण संबंधी चुनौतियों को संयुक्त रूप से संबोधित करने के लिए।

चन्दन की उत्तम खेती के लिए वैज्ञानिक तकनीक

आरजू, कमलेश वर्मा, अश्वनी कुमार, राजकुमार, सुनिता देवी एवं अनिता मान

भा.कृ.अनु.प-केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल-132 001, हरियाणा

ई मेलः aarzoosharma456@gmail.com

सारांशः

चंदन एक सदाबहार पेड़ है जो दो प्रकार का होता है, सफेद चंदन तथा लाल चंदन। चंदन का पौधा भारत में मुख्य रूप से तमिलनाडु और कर्नाटक में पाया जाता है। चंदन के पेड़ की खेती को 12^0 से 35^0 सेल्सियस तापमान व 7.5 से 8.5 पी.एच. मान तक की आवश्यकता होती है। चंदन का पौधा विभिन्न प्रकार की मिट्टी (रेत, लैटराइट) में उगने में सक्षम है। यह एक अर्ध-जड़ परजीवी पौधा है जो पोषक तत्वों के लिये पूर्ण रूप से परपोषी पौधे पर निर्भर रहता है। *कैजेनस कजान* (अरहर) चंदन के लिये सर्वश्रेष्ठ प्राथमिक परपोषी पौधा है। चंदन के पौधों को उगाने के लिये दो प्रकार के सीड बेड्स जैसे कि ''धँसा हुआ'' और ''उठे हुए बेड'' का उपयोग किया जाता है। चंदन की लकड़ी को 13 साल बाद मार्किट में लाया जाता है। ''सैंडल स्पाइक'' चंदन की खेती के लिये सबसे खतरनाक रोग है। भारत सरकार द्वारा चंदन की खेती के लिये ऋण व सब्सिडी की सुविधा भी उपलब्ध है।

परिचय

कृषि-वानिकी प्रणालियों की प्रगतिशीलता के समय में किसान ऐसे वृक्ष की प्रजातियों को उगाने में बहुत रुचि दिखा रहे हैं। जो उन्हें आर्थिक रूप से सहायता प्रदान करतें है क्योंकि इन वृक्षों की खेती किफायती तौर पर बहुत महत्वपूर्ण है। चंदन (*सैंटलम एल्बम*) एक ऐसी प्रजाति है जो अपने विशेष गुणों व लाभप्रद मूल्य के कारण ध्यान केन्द्रीत कर रही है। चंदन भारतीय परंपरा का एक महत्वपूर्ण वृक्ष है। जिसका उल्लेख प्राचीन महाकाव्य रामायण (2000 ईसा पूर्व) में भी मिलता है। चंदन एक सदाबहार पेड़ है, जो 20 मीटर की ऊँचाई तक बढ़ सकता है और 1.5 मीटर से अधिक की परिधि प्राप्त कर सकता है। चंदन के दो प्रकार होते हैं एक सफेद चंदन और दूसरा लाल चंदन। उत्तर भारत में सफेद चंदन की खेती सबसे ज्यादा होती है क्योंकि इसमें 7.5 पीएच वाली मिट्टी की जरूरत होती है यही कारण है कि लाल चंदन की खेती प्रायद्वीपीय भारत में की जाती है। चंदन की लकड़ी, बीज, जड़े सभी का औषधीय महत्व है। चंदन के पेड़ का हर्टवुड (अन्तःकाष्ठ) उसका सबसे मूल्यवान हिस्सा होता है। जिससे सुगंधित चंदन का तेल पैदा होता है।

तालिका 1ः चंदन की कुछ प्रजातियो का विवरण निम्न तालिका 1 में दर्शाया गया है।

रैंक	वैज्ञानिक नाम	स्थानीयनाम	प्राकृतिक वितरण
1	*एस. एल्बम*	भारतीय चंदन	भारत, इंडोनेशिया, श्रीलंका
2	*एस. यासी*		फिजी, नीयू, टोंगा
3	*एस. एसुट्रोकेलेडोनिकम*	वानुअतु चंदन	न्यू कैलेडोनिया, वानुअतु
4	*एस. मैकग्रेगोरी*		इंडोनेशिया
5	*एस. स्पाइकटम*	ऑस्ट्रियाई चंदन	ऑस्ट्रेलिया
6	*एस. लांसोलेटम*	उत्तरी चंदन	ऑस्ट्रेलिया

चंदन के तेल में ज्वररोधी, रोगाणुरोधक और अर्धशीर्षी गुण होते है। चीन, वर्मा आदि देशों के मंदिरों में चंदन के बुरादे की धूप भी जलाई जाती है। चंदन का पेड वास्तव में उस जाति के पेडों में से है, जो दूसरे पौधों के रस से अपना पोषण करते हैं (जैसे, बाँदा, कुकुरमुत्ता आदि)। इसी कारण से यह घास, पौधों और छोटी छोटी झाडियों के बीच में अधिक उगता है। इसके भारतीय भाषाओं में लगभग 15 अलग-अलग नाम हैं। अंग्रेजी में इसे भारतीय चंदन, संस्कृत में हरि चंदन, हिंदी, बंगाली और पंजाबी में चंदन, कन्नड़ में श्रीगंधाय, मलयालम में चंदनाय, तमिल में चंदनमय, तेलुगु में संथानम, श्रीगंधारय चंदनमु, हरि चंदनम, उड़िया में बोगा, असम में चंदोनो और गुजराती में सुकेत कहा जाता है। चंदन का पौधा मुख्य रूप से भारत में पाया जाता है। विश्व में सबसे ज्यादा चंदन (*सैंटलम एल्बम*) भारत में पाया जाता हैं। उसके बाद चीन (*सैंटलम एल्बम*), ऑस्ट्रेलिया (*एस. स्पाइकटम*) में पाया जाता है। विश्व में 90 प्रतिशत चंदन भारत के कर्नाटक और तमिलनाडु से आता है इसीलिए मैसूर को सैडंलवुड सिटी कहा जाता हैं। चंदन का पेड़ भारत, नेपाल, बांग्लादेश, पाकिस्तान, श्रीलंका, ऑस्ट्रेलिया, इंडोनेशिया, हवाई और प्रशांत द्वीप समूह में पाया जाता है। भारत में चंदन के वितरण की कुल सीमा लगभग 9000 किलोमीटर वर्ग है जिसमें से 8200 किलोमीटर वर्ग कर्नाटक और तमिलनाडु राज्यों में है। यह स्वाभाविक रूप से प्रायद्वीपीय भारत में होता था, लेकिन बाद में इसे अन्य भागों में भी उगाया जाने लगा। भारत में चंदन के संसाधन को वर्तमान में चार कारकों से खतरा हैः आग, पशुधन द्वारा चारण, स्पाइक (छोटी पत्ती) रोग, और तस्करी।

जलवायुः

चंदन के पेड़ की फसल को गर्म वातावरण की आवश्यकता होती है। चंदन के पेड़ की खेती के लिए 12 से 35 सेल्सियस के बीच तापमान की आवश्यकता होती है तथा 7 से 8.50 पी एच मान तक की मृदा में इसे उगाया जा सकता है। परंतु खनिज एवं नमी युक्त भूमि में इसका विकास कम होता है चंदन पर फूल और फल वर्ष में दो बार मार्च-अप्रैल और सितम्बर-अक्टूबर में आते है।

भूमिका चयनः

चंदन विभिन्न प्रकार की मिट्टी में उगने में सक्षम है जैसे रेत, मिट्टी, लेटराइट, दोमट, और काली-सूती मिट्टी (जलभराव की स्थिति से बचकर)। बहुत खराब और पथरीली मिट्टी में भी चंदन आसानी से चलता है क्योंकि गहराई से पुनः उत्पन्न करने में सक्षम है। चंदन के पेड़ बर्फिले इलाके में नहीं उगाए जा सकते है। हरियाणा, पंजाब सहित यूपी में मिट्टी का पीएच 7.5 के आस-पास है जहाँ सफेद चंदन की खेती अच्छे तरीके से की जा सकती है।

परपोषी पौधों का चयनः

चंदन एक अर्ध-जड़ परजीवी पौधा है। यह 300 से अधिक प्रजातियों के साथ परजीवी कर सकता है। सामान्यतः चंदन परपोषी पौधों के साथ हौस्टोरियल संपर्क स्थापित करता है जो परजीवी और परपोषी के बीच एक भौतिक और शारीरिक पुल प्रदान करता है और नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटेशियम तथा अन्य पोषक तत्व की आवश्यकता के लिए उन पर निर्भर रहता है। अध्ययनों से पता चला है कि परपोषी पौधे खनिज पोषक तत्व और पानी की मात्रा को प्रभावित करते है। चंदन 3 साल तक बिना परपोषी पोधे के रह सकता है लेकिन उसके बाद वह मर जाता हैं। एक अध्ययन में पाया गया कि *कजानस कजान* (अरहर) ने सर्वश्रेष्ठ प्राथमिक परपोषी के रूप में काम किया। चंदन का *हौस्टोरियम हाइलाइन* बॉडी (कोशिकाओं से भरपूर संरचना) (रिओपेल और टिमको 1995), एंडोफाइट या पेनेट्रेशन पेग (जो परपोषी पौधों की जडों में प्रवेश करके पोषक तत्वों व अन्य तत्वो का आदान प्रदान करता हैं), और दीर्घवृत्ताकार डिस्क का बना होता है। *कैसुरीना इक्विसेटिफोलिया, अकेशा निलोटिका* (बबूल), *पोंगामिया पिनाटा* (करंज), *मेलिया दूबिया* (मालाबार नीम), *राइटिया टिनक्टरिया* (मीठा इन्द्रजौ) और *कैसिया सियामिया* (कसोद), *अल्टरनेंथेरा* (मत्स्याक्षी) प्रजातियां, *लाइकोपर्सिकम एस्कुलेंटम* (टमाटर), *मूसा पारादीसियाका* (केला), *डालबर्गिया सिसो* (शीशम) आदि चंदन के लिए सबसे अच्छे परपोषी पौधे हैं। परजीवी वाद के लिए तीन सफल चरण की पहचान की गई है (1) पॉट होस्ट में नर्सरी प्रसार (प्रारंभिक या प्राथमिक) प्राथमिक परपोषीः जिसमें चंदन अंकुर होता है, (2) मध्यवर्ती परपोषी (नर्सरी और क्षेत्र को पाटना) और (3) दीर्घावधि (माध्यमिक) परपोषी।

आनुवंशिकीः

ऑस्ट्रेलियाई और अमेरिकी वैज्ञानिकों द्वारा शोध से पता चला है कि चंदन का आनुवंशिकी अध्ययन पिछले लगभग 10 सालों में अधिक लोकप्रिय हुआ है। चंदन की कई प्रजातियों के लिए डीएनए बार-कोडिंग की गई है और उन शोधों में माईक्रो सेटेलाईट मारकर्स का लगातार प्रयोग आम था। सन् 1997 में (सीता और भट्टाचार्य) चंदन की डीएनए क्लोनिंग भी की गई थी। और उसके बाद भारतीय चंदन का आनुवंशिक मानचित्रणों (नागेश्वर राव 2012) द्वारा किया गया था। जोन्स और उसके साथियों ने (2006, 2008, 2011) ने ऑस्ट्रेलिया में भारतीय चंदन पर विस्तृत आनुवंशिक अध्ययन किया। उनका अध्ययन मुख्य रूप से भारतीय चंदन के डीएनए अलगाव और सुगंध जैव संश्लेषण पर केन्द्रित था। अहीर और उसके साथियों ने (2014) ने भारतीय चंदन की वृद्धि पर मिट्टी (रेतीली, लाल मिट्टी, पीली मिट्टी) के प्रकार के प्रभाव का अध्ययन किया और देखा कि छह महीने पुराने पौधों की उत्तरजीविता और समग्र विकास के लिए पोटिंग में ऊँचाई, कॉलर व्यास और जीवित रहने की दर समान थी।

रोपणः

मार्च-अप्रैल और सितंबर-अक्टूबर में 15 से 20 साल की उम्र के पौधों से एकत्रित बीज बुवाई के लिए सबसे अच्छे होते हैं। नर्सरी बेड पर बुवाई से पहले इन एकत्रित बीज को सुखाया जाना चाहिए और अच्छी तरह से 0.05 प्रतिशत जिबरेलिक एसिड से उपचारित करें। आमतौर पर, नर्सरी बेड पर उगाए गए 15 से 20 सेमी. ऊँचाई के 7 से 8 महीने पुराने अच्छी शाखाओं वाले पौधे मुख्य क्षेत्र में रोपाई के लिए उपयोग किए जाते हैं। चंदन की पौधों को उगाने के लिए दो प्रकार के सीडबेड्स जैसे कि ''धँसा हुआ'' और ''उठे हुए बेड'' का उपयोग किया जाता है। ''धसाँ हुआ बेड" मिट्टी की सतह से 10 से 15 सेंटीमीटर नीचे की और तैयार किया जाता है। जबकि ''उठे हुए बेड'' में मिट्टी को जमीनी स्तर से ऊपर उठाया जाता है।

चित्र 1ः चंदन और परपोषी पौधा

सिंचाई प्रबंधनः बारिश के समय में चंदन के पेड़ों का तेजी से विकास होता है लेकिन गर्मी के मौसम में इसकी सिंचाई अधिक करनी होती है। बरसात के मौसम के बाद दिसंबर से मई तक मिट्टी में नमी के अनुसार सिंचाई करनी चाहिए। रोपण के बाद 6 से 7 सप्ताह जब तक बीज में अंकुरण शुरू ना हो जाए तब तक जरूरत

के अनुसार सिंचाई करते रहे। चंदन की खेती में पौधों के विकास के लिए मिट्टी हमेशा नम रहनी चाहिए। अंकुरित होने के बाद एक दिन छोडकर सिंचाई करें।

चंदन का हर्टवुड (लकडी) सबसे महत्वपूर्ण व मूल्यवान होता है। जिसकी वृद्धि 8 वर्ष के बाद शुरू हो जाती है तथा 12 से 15 वर्ष पुराने चंदन के वृक्ष की हर्टवुड (लकडी) को बाजार में लाया जाता है। जो कि इत्र, तेल, मोमबतियाँ, धूप व औषधियां बनाने में इस्तेमाल होती है। चंदन के बीज का प्रयोग खाँसी, बुखार व गले में खराश के इलाज के लिए किया जाता है।

चंदन में अंतर फसलः चंदन के बीच में हम अन्य फसल ले सकते है जिसे हम इंटरक्रॉप (अंतर फसल) कहते है। अंतर फसल के रूप में हम विभिन्न प्रकार की सब्जियो, फूलों, गेहूँ, चना, सोयाबीन इत्यादि की खेती कर सकते है। अंतर फसल का चंदन पर कोई नकारात्मक प्रभाव नहीं होता और चंदन का भी उन फसलों पर कोई नकारात्मक प्रभाव नहीं होता है।

तालिका 2: भारत में चंदन वृक्षारोपण क्षेत्र का राज्यानुसार विवरण

क्रम संख्या	राज्य	क्षेत्रफल (हेक्टेयर में)
1	कर्नाटक	12000
2	तमिलनाडु	600
3	केरल	70
4	आंध्र प्रदेश	350
5	तेलंगाना	5104
6	महाराष्ट्र	110
7	मध्य प्रदेश	410
8	गुजरात	100
9	पंजाब	10
10	हिमाचल प्रदेश	31
11	असम	40
12	हरियाणा	25

वृक्षारोपण क्षेत्रः भारत में चंदन की खेती के तहत कुल भूमि सालाना 600 हेक्टेयर बढ़ रही है। चंदन वृक्षारोपण का देश में लगभग कुल क्षेत्रफल 20725 हेक्टेयर है।

चंदन की खेती को प्रोत्साहन

भारत सरकार द्वारा चंदन उगाने के इच्छुक किसानों के लिए सब्सिडी और ऋण की सुविधा भी उपलब्ध है। नाबार्ड सहित कई बैंक चंदन परियोजनाओं की व्यावसायिक खेती के लिए लोन देते हैं। और एनएमपीबी (राष्ट्रीय औषधीय पादप बोर्ड) भी चंदन परियोजनाओं पर सब्सिडी प्रदान कर रहा है। भारतीय कृषि वानिकी एवं अनुसंधान शिक्षा परिषद (आई सी एफ आर ई) ने साल 2021 में गुजरात और राजस्थान के लिए चंदन की खेती की परियोजना स्वीकृत की थी। राजस्थान के आफरी में किये गए सर्वे के बाद अलग से एक प्रस्ताव तैयार किया गया। जिसके तहत चंदन के साथ परपोषी (सहयोगी) पौधे के रूप में लाल मेहंदी को लगाया जाएगा। ताकि चंदन लाल मेहंदी के पौधों की जड़ों से पोषण प्राप्त करेगा। उसके बाद लाल मेहंदी का पौधा स्वतः मृत हो जाएगा और चंदन का पेड़ मेहंदी की चमक लेकर बड़ा होगा। आफरी में अलग अलग ग्रीन हाउस बनाकर इसके पौधे तैयार कर दिए गए हैं हिमाचल प्रदेश के वन विभाग नेकांगड़ा जिले के इलाके देहरा, ज्वालामुखी, डाडासीबा, खुंडिया में चंदन की खेती तथा तस्करों से इसकी सुरक्षा के लिए पायलट प्रोजेक्ट चलाया है।

कीट व रोग नियंत्रण

सैंडल स्पाइक नाम का एक रोग है जो की चन्दन के पेड़ का सबसे बड़ा दुश्मन कहलाता है। क्योंकि यह एक पौधे से दूसरे पौधे में फैलता है। इस रोग के लगने से पेड़ के सभी पत्ते छोटे हो जाते हैं और साथ ही पेड़ भी टेढ़े मेढ़े हो जाते है। इसकी रोकथाम के लिए अभी तक कोई उपचार नहीं है और पेड़ को काटना ही एक बचाव का तरीका है। इस बीमारी के तहत 1903-1916 के बीच कोटागू, कर्नाटक और मैसूर में लगभग लाखों चंदन के वृक्षों को काटा गया था। हालाँकि इस बीमारी की रोकथाम के लिए लकड़ी विज्ञान और प्रौद्योगिकी संस्थान, बैंगलोर और राष्ट्रीय कोशिक विज्ञान केन्द्र, पूना मिलकर काम कर रहे है।

निष्कर्ष

चंदन के पेड़ का हर्टवुड सबसे मूल्यवान हिस्सा होता है। चंदन के तेल में मौजूद ज्वररोधी, रोगाणु रोधक और अर्धशीर्षी गुण इसके औषधीय महत्व का कारण है, इसीलिये वर्तमान में औषधीय महत्व व लाभप्रद मूल्य के कारण चंदन की खेती किसानों का ध्यान केन्द्रित कर रही है।

मखाने का फसलोत्तर तकनीकी एवं उपयोग

रोहित कुमार[1], डॉ. अमित कुमार सिंह[2] एवं संदीप गौतम[3]

[1]पी.एच.डी. शोध छात्र, फसलोत्तर प्रौद्योगिकी विभाग, बाँदा कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, बाँदा उ.प्र.

[2]सहायक प्राध्यापक, फसलोत्तर प्रौद्योगिकी विभाग, बाँदा कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय बाँदा उ.प्र.

[3]एम.एस.सी. (कृषि) कृषि अर्थशास्त्र विभाग, आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय कुमारगंज, अयोध्या उ.प्र.

ई-मेलःamitsinghbckv@gmail.com

सारांश

मखाना की खेती उसमें उपलब्ध पोषक तत्वों की विशेषता के कारण काफी प्रचलित है। परन्तु इसकी खेती उन्हीं क्षेत्रों में संभव है, जहाँ पर जल जमाव की स्थिति (तालाब) पुरे वर्ष बनी रहे। सामान्यतौर पर मखाना के बीज में प्रोटीन की मात्रा खाद्यान्य फसलों की तुलना में काफी अधिक होती है, परन्तु प्रसंस्करण के उपरान्त इसमें प्रोटीन की मात्रा कई गुना बढ़ जाती है। इस उच्च प्रोटीन के कारण यह एक पौष्टिक खाद्य पदार्थ भी है। इसके साथ ही यह खनिज लवण का भरपूर श्रोत है। जो की मनुष्य की मूलभूत आवश्यकताओं में से एक है।

परिचय

मखाना तालाब, झील, दलदली क्षेत्र के शांत पानी में उगने वाला पोषक तत्वों से भरपूर एक जलीय उत्पाद है। इसकी खेती नकदी फसल के रूप में की जाती है एवं इसे कुरूपा अखरोट के नाम से भी जानते है। मखाना का वानस्पतिक नाम यूरेल फेरोक्स सलीब है, जिसे सामान्य बोलचाल की भाषा में कमल का बीज भी बोलते हैं। यह ऐसी फसल है, जिसे पानी में उगाया जाता है तथा इसके वृद्धि एवं विकास के लिए लगभग 20 डिग्री. सेंटीग्रेड से 35 डिग्री. सेंटीग्रेड तापमान एवं 70.90 प्रतिशत तक सापेक्षिक आद्रता के साथ 100-250 सेंटीमीटर वार्षिक वर्षा का होना भी जरूरी होता है। *मखाना फॉक्सनट* के बीजों की लाई है, वैसे ही जैसे पापकार्न मक्का की लाई है। मखाना जड़कन्द होने के साथ ही बड़ी-बड़ी गोल पत्तियाँ पानी की सतह पर हरी प्लेटो की तरह तैरती है। इसमें सुन्दर, नीले, जामुनी अथवा लाल कमल जैसे फूल खिलते है। परम्परागत रूप से कमल और मखाना दोनों का पूजा में बड़ा महत्व है। मखाना की खेती भारत के विभिन्न राज्यों के अंतर्गत आदिवासी समुदाय के द्वारा भी की जाती है। साथ ही आदिवासी समुदाय तालाबों से इनके बीजों को एकत्र करने एवं उसके प्रसंस्करण में काफी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है। इसके साथ ही भारत के कुछ भू-भाग पर रहने वाले आदिवासी समाज मखाने की खेती पर ही निर्भर रहती है। मखाना की खेती भारत के साथ-साथ चीन, जापान, कोरिया और रूस में की जाती है। लगभग 68-85 प्रतिशत मखाना भारत में स्थित बिहार राज्य के दरभंगा, मधुबनी, समस्तीपुर, सहरसा, सुपौला, सीतामढी, पूर्णिया, कठिहार इत्यादि जिलों में उत्पादन होता है। इसके पौधे काटेदार तथा कमल के समान होते है। इसके पत्ते गोलकार होते है, जो ऊपर से हरे लेकिन नीचे से लाल या बैगनी रंग के होते है। इसके फल गोलकार कांटेयुक्त एवं मुलायम होते है, साथ ही इसके बीज मटर के समान अथवा इससे कुछ बड़े होते है। मखाने की माँग हमेशा बनी रहती है। बिहार में बड़ी मात्रा में इस की खपत होती है साथ ही दिल्ली, कोलकाता जैसे बड़े शहरों के अलावा पूरे देश के साथ विदेशों में भी इस की काफी माँग है।

विभिन्न भाषाओं में मखाना के नाम

भाषा	मखाना के नाम
हिन्दी	मखाना, मखान्ना
उर्दू	मखाना
बंगाली	मखाना
गुजराती	मखाणा
तेलगू	मेल्लुनिपदममु
नेपाली	मखना
पंजाबी	जवेर
मराठी	मखणे
संस्कृत	मखान्न, पानीयफल

2. मखाने में मौजूद पोषक तत्व

मखाने का सेवन करना शरीर के लिए बहुत ही लाभदायक होता है, किन्तु पुरुषों के लिए यह अधिक लाभकारी होते है। क्योंकि इसमें आयरन, सोडियम, कैलोरी, मिनरल, फॉस्फोरस, कार्बोहाइड्रेट, फैट और प्रोटीन जैसे पोषक तत्व पाए जाते है, जो शारीरिक शक्ति के लिए बहुत ही लाभकारी माना जाता है तथा शारीरिक कमजोरी को भी दूर करता है। मखाना में पाए जाने वाले पोषक तत्वों का विवरण निम्न प्रकार से हैः

मखाना में पाये जाने वाले कुछ पोषक तत्व एवं उनकी मात्रा

पोषक तत्व	मात्र
कार्बोहाइट्रेट	76%
वसा	0.1%
खनिज लवण	0.5%
फास्फोरस	0.9%
प्रोटीन	12%
नमी	20%
आयरन	1.4%
सोडियम	750 मिलीग्राम / 100 ग्राम
पोटैशियम	57 मिलीग्राम / 100 ग्राम
जिंक	66 मिलीग्राम / 100 ग्राम
फाइबर	3.6 ग्राम / 100 ग्राम

3. मखाना खेती की परम्परागत विधि

इस विधि के अन्तर्गत बीज बोने की आवश्यकता नहीं होती है। क्योंकि पिछले वर्ष कटाई के उपरान्त जो बीज शेष रह जाते है। वही बीज अगामी वर्ष के रूप में काम करते है। परम्परागत विधि के अन्तर्गत मखाना के तालाबों में विभिन्न प्रकार की मछलियाँ बाढ के पानी के साथ-साथ प्रवेश कर जाती है जिससे किसानों को दुगनी आय प्राप्त होती है।

4. फसलों की कटाई

मखाना के फसल कटाई का मतलब तालाब की ऊपरी सतह पर एकत्र बीजों का एकत्रीकरण करना होता है। परम्परागत विधि से बोई गई मखाना के बीजों को जमा करने का सिलसिला अगस्त महीने से अक्टूबर महीने तक चलता है। बीजों का एकत्रीकरण सुबह के समय 6 से 10 बजे तक किया जाता है। परम्परागत विधि के अन्तर्गत मखाना की खेती करने पर तालाब में पानी की गहराई कम होने पर बीजों को एकत्र करना काफी आसान होता है तथा समय की भी बचत होती है।

5. मखाने की फसल का फसलोत्तर तकनीकी

फसलोत्तर तकनीकी के अन्तर्गत मखाने को धूप में सुखाना, आकार के आधार पर ग्रेडिंग करना, पूर्वतापन करना, टेम्परिंग करना, भूनना तथा पापिंग करना, पॉलिश करना एवं पैकेजिंग करना आता है। वर्तमान समय में मखाना के प्रसंस्करण की सारी प्रक्रिया हाथों के द्वारा सम्पन्न की जाती है।

5.1 मखाना को धूप में सुखाना

ताजे बीजों से नमी की मात्रा कम करने के लिए यह पहला चरण होता है इसके अन्तर्गत ताजे फल को मकान के ऊपर छत पर या चटाई पर 2-3 घंटे तेज धूप में रखते है जब बीजों में नमी का स्तर लगभग 25-30 प्रतिशत तक रह जाता है तब मखाना के बीजों को धूप से हटा लिया जाता है।

5.2 बीजों का वर्गीकरण करना

बीजों का वर्गीकरण करने के लिए लगभग सात अलग-अलग चलनी की आवश्यकता पड़ती है तथा प्रत्येक चलनी पर एक से सात अंक अंकित किया जाता है एक अंक वाले चलनी के छिद्र का व्यास लगभग 1.2 से.मी. सबसे बड़ा एवं सात अंक वाले चलनी के छिद्र का व्यास लगभग 0.4 से.मी. सबसे छोटा रखते है। अब धूप से सूखे हुए बीजों का वर्गीकरण करने के लिए बीजों को चलनी में डालकर, चलनी से चाला जाता है इस प्रक्रिया के दौरान आकार के आधार पर ढेर लगाया जाता है।

5.3 पूर्व तापन

इसके अन्तर्गत धूप में सूखे हुए बीजों को प्रायः मिट्टी से बने बर्तन अथवा कास्ट आयरन पैन में रखकर बीजों को गर्म करते है बीजों को गर्म करने में लगभग 5-10 मिनट का समय लगता है इस समय के दौरान आग पर रखे बीजों को निरन्तर हिलाने डुलाने की आवश्यकता होती है। गर्म बर्तन के सतह का तापमान लगभग 250 से 300 डिग्री सेंटीग्रेड के बीच रखते है। इस क्रिया को करने के उपरान्त बीजों से नमी घटकर 18-20 प्रतिशत तक रह जाती है।

5.4 टेम्परिंग करना

गर्म किये गये मखाना के बीजों को अनुकूल परिवेश में 48-72 घंटे तक भण्डारण करना टेम्परिंग कहलाता है। बीजों का टेम्परिंग प्रक्रिया के परिणामस्वरूप बीजो के बडे आवरण से दाने को ढीला करना तथा बीज में उपस्थित नमी के संतुलन को बनाये रखने के लिए यह क्रिया की जाती है।

5.5 भूनना

मखाना के बीजों को भूनने के दौरान (तापमान 290-350 डिग्री सेंटीग्रेड) 2-3 मिनट के बाद बीजों के बाहरी आवरण से फटने की धुन सुनाई देती है। यह ध्वनि इस बात को बताती है, की मखाना का बीज अच्छी तरह भुना जा चुका है।

5.6 पापिंग करना

मखाना के कुछ भुने हुए बीजों को कटाई से निकालकर किसी कडे सतह पर रखने के उपरान्त किसी लकड़ी के हथौडे से पीटा जाता है, जैसे-जैसे बीज का बडा आवरण हटता वैसे-वैसे बीज फैले हुए आकार में बाहर निकलने लगता है। जिसे लाता कहा जाता है। कच्चे बीज के कुल भार का लगभग 35-40 प्रतिशत ही मखाना से लाता प्राप्त होता है।

5.7 पॉलिश करना

मखाना को पापिंग करने के तुरन्त बाद पॉलिश की आवश्यकता होती है। क्योंकि पाप्ड मखाना नमी को जल्दी सोख लेता है, जिससे बाद में पॉलिश करने में कठिनाई होती है। मखाना को रगड़कर पॉलिश किया जाता है तथा इस क्रिया को करने से मखाना ज्यादा चमकदार एवं आकर्षक हो जाता है।

5.8 पैकिजिंग करना

मखाना अन्य कृषि उत्पादों की अपेक्षा कम खराब होने वाला उत्पाद है। अतः इसे निकटतम बाजार के लिए गनी बैग में तथा दूरस्थ बाजार के लिए पालीथीन बैग में पैंक किया जाता है।

5.9 भण्डारण करना

उत्पादनकर्ता मखाना को सामान्य अवस्था में लम्बे समय तक भण्डारण कर सकता है, परन्तु इसके लम्बे-लम्बे ढेर होने की वजह से इसे ज्यादा जगह की आवश्यकता होती है। अतः मखाना के सम्पूर्ण उत्पाद को किसी थोक व्यापारी को बेचा जाता है। थोक व्यापारी मखाने का भण्डारण लम्बे समय तक करके बाजार में बेचने पर ज्यादा लाभ मिल जाता है। अतः मखाना एवं मखानों से बने उत्पादों को नम मुक्त भण्डारण में संग्रहित किया जाता है।

6. मखाना का उपयोग

6.1 मखाने से बने खाद्य पदार्थ

मखाना (लाता) का उपयोग पौष्टिक एवं स्वादिष्ट मीठे व्यजंन जैसे मखाना सेवई, मखाना हलवा, मखाना खीर इत्यादि बनाने में किया जाता है। इसके अलावा मखाना को मंदिरों में देवी देवताओं को चढ़ाया जाता है। मखाना अन्न की श्रेणी में नहीं आता, इसलिए मखाना को धार्मिक व्रत के समय भोजन के रूप में ग्रहण किया जाता है।

6.2 औषधीय उपयोग

प्राचीन साहित्य में मखाना के औषधीय गुणों की चर्चा विस्तार से की गई है इन साहित्यों के अनुसार पौधे के प्रत्येक भाग में टॉनिक, संकोचन कठोर करने वाला और मल के अवरोध को दूर करने वाला गुण पाया जाता है।

6.3 चारे के रूप में उपयोग

प्रसंस्करण से प्राप्त भूसी को व्यर्थ पदार्थ माना जाता है। मखाना से प्राप्त भूसी में लगभग 90 प्रतिशत तक सुखा पदार्थ, 7 प्रतिशत प्रोटीन, 0.5 प्रतिशत वसा एवं 94 प्रतिशत कार्बनिक पदार्थ होता है। मखाना की भूसी को मुर्गी चारे सान्द्र खाना का 6 प्रतिशत पूरा करता है। मखाना की भूसी को पशु एवं पक्षियों को खिलाने से शारीरिक वृद्धि एवं दूध की उत्पादकता और पोषक तत्व के पचने की वृद्धि दर बढ़ जाती है।

7. मखाना खाने के फायदे

- मखाना एक ऐसा सूखा मेवा है जिसको खाने से वजन पर नियंत्रण पाया जा सकता है। मखाना में एथेनाल अर्क होता है, जो कि फैट सेल्स को कंटोल करता है साथ ही यह फैट सेल्स के वजन को भी कम करता है।
- दस्त होने पर यदि घी में भुने हुए मखाना खाया जाय तो इससे काफी फायदा होता है।
- मखाना शुगर के मरीजों के लिए काफी अच्छा स्नैक्स है। यदि मधुमेह बीमारी को नियंत्रण में लाना है तो खाली पेट का सेवन करना लाभदायक होता है।
- ब्लैड प्रेशर को नियत्रंण करने में भी मखाना काफी फायदे मंद होता है।
- मखाना प्रोटीन का अच्छा स्रोत है, इसलिए इसके नियमित उपयोग से शरीर में प्रोटीन की आवश्यक मात्रा की पूर्ति के साथ प्रोटीन की कमी से होने वाले समस्याओं को दूर किया जा सकता है।
- मखाने का नियमित रूप से सेवन करने से किडनी और दिल स्वस्थ बना रहता है।
- मखाने में एंटी- इंफ्लेमेट्री और एंटी माइक्रोबियल का गुण पाया जाता है। मखाने में पाये जाने वाले ये दोनों गुण मसूडे संबंधी सूजन और बैक्टीरियल प्रभाव के कारण होने वाली दांतों की सड़न को रोकने में मददगार साबित हुए है।
- मखाना में एंटी आक्सीडेट गुणों से भरपूर होता है यह गुण त्वचा पर आने वाल एजिंग के प्रभाव जैसे झुर्रियो को दूर करने में मददगार साबित हुआ है।

8. निष्कर्ष

भविष्य में देश की बढ़ती आबादी के लिए मखाना की उपलब्धता एक कठिन चुनौती है। यह उत्पादन बढ़ाने, भण्डारण एवं प्रसंस्करण के दौरान हो रहे नुकसान को कम करके किये जा सकता है। मखाना की खेती एवं उसके प्रसंस्करण में आदिवासी समुदाय का काफी महत्वपूर्ण सहयोग रहता है। क्योंकि इसके बीज को एकत्र करना काफी कठिन होता है, जो की इस समुदाय विशेष द्वारा बहुत ही आसानी से किया जाता है। साथ ही इसके प्रसंस्कृत उत्पाद द्वारा इनके सामाजिक आर्थिक स्थिति में भी काफी सुधार होता है। मखाना में उपलब्ध पोषक तत्वों में प्रोटीन एवं खनिज लवण काफी प्रचुर मात्रा में पाए जाते है, जो एक संतुलित आहार की मूलभूत

आवश्यकता है। इसके निरंतर सेवन से न केवल स्वास्थ्य में सुधार अपितु शरीर में रोग से लड़ने की क्षमता का भी विकास होता है। अतः उपरोक्त विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए सरकार खाद्य प्रसंस्करण केंद्र और कृषि वस्तु प्रसंस्करण केंद्र की स्थापना के लिए भी प्रोत्साहित कर रही है। कुटीर स्तर के प्रसंस्करण उद्योगों को सब्सिडी और आसान ऋण के रूप में लघु प्रसंस्करण उपकरणों के प्रसंस्करण के लिए कृषि उद्यमिता को विशेष पैकेज दिया जा रहा है। साथ ही इन सभी अवसरों को तलाशने की जरूरत है, और राज्य के कृषि विश्वविद्यालयों, केंद्रीय और आई.सी.ए.आर. संस्थानों द्वारा तकनीकी जानकारी का प्रसार किया जाना बहुत उपयोगी होगा। उत्पादन बढाने के लिए कृषि उपकरणों की कस्टम हायरिंग सफल रही है, और इसे स्थानीय आवश्यकता के आधार पर, चलित प्रसंस्करण इकाईयों और विभिन्न समूहों में कृषि-प्रसंस्करण केंद्रों की स्थापना के माध्यम से प्रसंस्करण उपकरण के लिए उपयोग किया जा रहा है।

जलवायु स्मार्ट कृषि वानिकी

मंगल सिंह, अनुज कुमार, सत्यवीर सिंह, अनिल कुमार खिप्पल, राज कुमार एवं ज्ञानेन्द्र प्रताप सिंह

भा.कृ.अनु.प.-भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

सारांश

कृषि वानिकी भूमि उपयोग प्रणाली एवं प्रौद्योगिकियों का ऐसा प्रबंधन है जिसके अंतर्गत निर्धारित भू-भाग पर एक निश्चित समय में लकड़ी वाले बहुवर्षीय पौधों के साथ उद्यानिकी और वार्षिक कृषि फसलें उगाने के साथ पशुपालन आदि से अधिक से अधिक उत्पादन प्राप्त किया जा सके। भारत जैसे विशाल देश में तेजी से बढ़ती जनसंख्या, शहरीकरण एवं औद्योगिकीकरण के कारण घटती भूमि जोत एवं जलवायु परिवर्तन से घटती उत्पादकता कृषि वानिकी के महत्व को और भी अधिक प्रबल बनाती हैं। भा.कृ.अनु.प.-केन्द्रीय कृषि-वानिकी अनुसंधान संस्थान, झाँसी, उत्तर प्रदेश की एक रिपोर्ट के अनुसार भारत में कृषि-वानिकी का क्षेत्रफल लगभग 13.75 मिलियन हैक्टर है। कृषि वानिकी छोटे व मंझोले किसानों को आय के कई विकल्प प्रदान करती है जिससे उनको आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनाया जा सकता है। कृषि वानिकी से उत्पादित खाद्य, फल, फूल, दूध, चारा, ईंधन, रेशा (फाइबर), उर्वरक, इमारती लकड़ी इत्यादि पोषण सुरक्षा और आय सृजन में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं। कृषि वानिकी भारत की सदियों पुरानी पद्धति है। यह आर्थिक एवं पर्यावरणीय सुरक्षा के प्रावधानों के माध्यम से गरीब लोगों की आजीविका में सुधार के अवसर प्रदान करती है। स्थाई कृषि को बढ़ावा देने, आयात पर निर्भरता कम करने और किसानों की आय में वृद्धि करने के लिए भारत सरकार फसल विविधीकरण को बढ़ावा दे रही है। फसल विविधीकरण के दृष्टिकोण से कृषि वानिकी को एक उत्तम विकल्प के रूप में देखा जा रहा है, क्योंकि इस पद्धति के तहत ही एक किसान सीमित भूमि संसाधनों से खाद्य, फल-फूल, सब्जियाँ, चारा, ईंधन, दूध, उर्वरक एवं फाइबर जैसे कई उत्पादों के अलावा पेड़ पौधों, फसलों व पशुओं आदि के माध्यम से अनेक आवश्यकताओं को पूरा करने के साथ-साथ मृदा स्वास्थ्य में सुधार और भूमि संरक्षण जैसे कार्य आसानी से कर सकता है।

चित्र 1: कृषि वानिकी का सफल अंगीकरण

कृषि वानिकी की पारम्परिक प्रणालियाँ

भारतीय उपमहाद्वीप में मिश्रित कृषि प्रणाली मानवीय जीवन का एक पारम्परिक तरीका रहा है। प्रत्येक गाँव में स्थानीय आवश्यकताओं के अनुसार पेड़, फसल एवं पशु-पालन गतिविधियों का संयोजन किया जाता है। इनमें से कुछ संयोजन समय की कसौटी पर खरे उतरे हैं और इन्हें बड़े पैमाने पर अपनाया जाता है। कृषि वानिकी की महत्वपूर्ण प्रणालियों का विस्तृत वर्णन निम्नलिखित है;

झूम खेती (स्थानांतरित खेती)

सबसे पुरानी तकनीक से की जाने वाली यह एक प्रकार की अनुक्रमिक कृषि वानिकी प्रणाली है। इसे भारत के पूर्वोत्तर राज्यों की पहाड़ियों पर आदिम जातियों द्वारा हजारों वर्षों से अपनाया जा रहा है। झूम खेती में जंगलों को काटकर, जलाकर क्यारियाँ बनाकर फसलें बोई जाती हैं। इस तरह की खेती अधिकतर देश के पूर्वोत्तर राज्यों जैसे मेघालय, अरुणाचल प्रदेश, आसाम आदि राज्यों में की जाती है। इस खेती को अलग-अलग राज्यों में अलग-अलग नामों से जाना जाता है। झूम खेती पूर्णतः प्राकृतिक होने के कारण उत्पादन कम होता है। झूम खेती में मुख्यतः चावल की फसल को उगाया जाता है। इसके अतिरिक्त अन्य फसलें जैसे खाद्य फसल, नकदी फसल, वृक्षारोपण, बागवानी आदि को भी उगाया जाता है।

चित्र 2: झूम खेती (स्रोतः टीवी 9, गुजराती)

तौंग्या प्रणाली

यह स्थानांतरित खेती का एक संशोधित रूप है जिसमें किसानों को एक क्षेत्र में फसल के साथ-साथ वन वृक्षों को उगाने

की भी अनुमति दी जाती है। कृषि वानिकी की इस पद्धति में भूमि की तैयारी, वृक्षारोपण और कृषि फसलों को 1-3 साल तक उगाना तथा इस चक्र को फिर से किसी अन्य दूसरे क्षेत्र में दोहराना शामिल है। भारत में इस पारम्परिक तौंग्या प्रणाली से पहला वृक्षारोपण वर्ष 1896 में उत्तरी बंगाल में किया गया था। अब यह पद्धति केरल, पश्चिमी बंगाल, उत्तर प्रदेश, तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश, उड़ीसा एवं उत्तर पूर्वी पहाड़ी क्षेत्रों में प्रचलित है। दक्षिणी भारत में इस प्रणाली को कुमारी कहा जाता है, और यह 1200-1500 मिलीमीटर से अधिक सुनिश्चित वार्षिक वर्षा वाले क्षेत्रों में प्रचलित है। कृषि वानिकी की इस पद्धति में मक्का, धान, मूँगफली, बाजरा, दालें, अदरक एवं बहुवर्षीय पौधे जैसे काजू, साल, सागवान एवं बांस आदि को समायोजित किया जाता है।

चित्र 3ः तौंग्या प्रणाली (स्रोतः गूगल)

खेजरी (*प्रोसोपिस सिनेरिया*) आधारित प्रणाली

हिन्दुओं के बीच अत्यधिक पूजयनीय पेड़ प्रोसोपिस सिनेरिया जिसे राजस्थान में खेजड़ी के नाम से जाना जाता है। इस पेड़ को भारत के उत्तर पश्चिमी क्षेत्रों में अलग-अलग नामों जैसे उत्तर प्रदेश में छौंकरा, गुजरात में खिजरो, हरियाणा में जंती तथा तेलंगाना में जम्मी आदि से जाना जाता है। भारतीय उपमहाद्वीप के शुष्क उत्तर-पश्चिम क्षेत्र की ग्रामीण अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने के लिए प्रचलित है। यह पेड़ वनस्पति प्रणाली का एक महत्वपूर्ण घटक है। इसका उपयोग पशु चारा, ईंधन एवं लकड़ी के रूप में किया जाता है साथ ही इसकी फलियों को सब्जी के रूप में उपयोग करते हैं। इसकी जड़ों में नाइट्रोजन स्थिरीकरण करने वाले बैक्टीरिया होने की वजह से अन्य फसलों के लिए पोषण कार्य करता है। यह रेगिस्तानी जमीन के नीचे पानी होने का सूचक तथा शुष्क परिस्थितियों के लिए अच्छी तरह से अनुकूलित है। इसीलिए रेगिस्तानी क्षेत्रों में इसे खेतों के बीच-बीच में लगाने की परम्परा है। ग्रामीण समुदाय अपने खेत, चारागाह एवं पंचायत की भूमि में खेजड़ी के विकास को प्रोत्साहित करते हैं। कृषि वानिकी शुष्क और रेगिस्तानी परिस्थितियों में खेजड़ी के पेड़ों को शामिल करने की सदियों पुरानी प्रथा है। इसके साथ बाजरा व अन्य धान्य व कंदन फसलों को सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है।

चित्र 4ः खेजरी (थार शोभा किस्म) आधारित प्रणाली

कृषि वानिकी गृह वाटिका

संयुक्त राष्ट्र संघ के खाद्य एवं कृषि संगठन की एक रिपोर्ट के अनुसार विकासशील देशों में 50 प्रतिशत खाद्य पदार्थों का उत्पादन महिलाओं द्वारा किया जाता है। कृषि वानिकी की यह पद्धति विकासशील देशों में छोटे किसानों के लिए खाद्य एवं पोषण सुरक्षा में सुधार करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। गृह वाटिका, जिसमें घर के आस-पास उपलब्ध भूमि तथा जल के उपयोग से शोभाकारी पौधों, फल एवं सब्जियों का उत्पादन किया जा सकता है। इस पद्धति के माध्यम से सब्जियाँ, मसाले, कंद, मूल, फल, मशरूम, मुर्गीपालन एवं पशुपालन आदि घटकों के साथ खाद्य सामग्री की इस विस्तृत परिदृश्य से सालभर आपूर्ति सुनिश्चित की जा सकती है। घरेलू खाद्य एवं पोषण सुरक्षा सुनिश्चित करने के अतिरिक्त घरेलू उद्यान उत्पादों को पास के बाजार में बेचकर अतिरिक्त आय भी अर्जित की जा सकती है। यह उद्यम वर्षा जल और खेत के कचरे के पुनर्चक्रण के माध्यम से पानी एवं जैविक उर्वरक के उपयोग में सुधार करने में भी मदद करता है। उपरोक्त के अतिरिक्त इस प्रणाली से पारिवारिक सदस्यों को रोजगार देने के साथ-साथ पारम्परिक फसल प्रणाली से जुड़े जोखिम को कम करने में मदद मिलती है।

चित्र 5ः कृषि वानिकी गृह वाटिका

कृषि क्षेत्रों में बहुउद्देशीय वृक्षारोपण

प्रधानमंत्री का "वोकल फॉर लोकल'' आवाहन कृषि वानिकी के लिए भी अत्यंत प्रासंगिक है। कृषि वानिकी कुछ महत्वपूर्ण वस्तुओं में आयात निर्भरता को कम करने के लिए उद्योग जगत को कच्चे माल की आपूर्ति बढ़ाने में अहम योगदान दे सकती है। इसके अतिरिक्त कई ऐसे उभरते क्षेत्र या सेक्टर हैं जो किसानों को त्वरित लाभ सुनिश्चित करने के साथ-साथ उद्योग जगत की आवश्यकताओं को भी पूरा कर सकते हैं। इनमें औषधीय एवं सुगंधित पौधे, रेशम, कागज, लुगदी एवं जैव ईंधन के उत्पादन के लिए पेड़ जनित तेल बीज एवं तिलहन इत्यादि शामिल हैं। आत्मनिर्भर भारत का सपना साकार करने के लिए कृषि वानिकी में बहुउद्देशीय प्रजातियों को समायोजित किया जा सकता है। सिंचित और असिंचित (शुष्क व अर्धशुष्क) क्षेत्रों में वृक्षारोपण के लिए पौधों के चयन का दृष्टिकोण अलग-अलग होता है। जो निम्नवत है;

असिंचित क्षेत्र (शुष्क व अर्धशुष्क)

भारतीय कृषि के योजनागत विकास के बावजूद आज भी लगभग 85 मिलियन हैक्टर (60 प्रतिशत) कृषि क्षेत्र असिंचित है। हमारे देश की अर्थव्यवस्था काफी हद तक मानसून पर निर्भर करती है। देश के 13 राज्यों के लगभग 100 जिलों को सूखा सम्भावित या शुष्क व अर्द्ध-शुष्क क्षेत्र के रूप में चिन्हित किया गया है, जहाँ पर कुल वर्षा वाष्पोत्सर्जन से भी कम होती है। शुष्क जलवायु परिस्थितियों में बागवानी फसलों का चयन एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है क्योंकि इससे जीवन-यापन के हर पहलू का संचालन संभव है। देश की बढ़ती हुई आबादी के लिए पौष्टिक फल, फूल एवं सब्जियों का उत्पादन नितांत आवश्यक है। इस खेती से क्षेत्र का विकास होने के साथ ही अर्थव्यवस्था भी मजबूत होगी और ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के अवसर सृजित होंगे। उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए कृषि वानिकी के तहत बेर, आँवला, खजूर, बेल, अनार, शहतूत, फालसा, करौंदा एवं इमली इत्यादि के अतिरिक्त उन्नत प्रौद्योगिकियों द्वारा अमरूद, नींबू व किन्नू के उत्तम गुणवत्ता के फल पैदा किए जा सकते हैं। इसके साथ नए स्थापित बागों में दलहनी (मूँग, मोठ व ग्वार) एवं चारे वाली फसलों को भी उगाया जाता है।

सिंचित क्षेत्र

सिंचित क्षेत्रों में हरित क्रांति से उत्पन्न समृद्धि ने लकड़ी की सामान्य कमी को और भी अधिक बढ़ा दिया है। इसलिए किसानों ने अपने घरों के आसपास, खेतों की सीमाओं, सिंचाई चौनलों के साथ तेजी से बढ़ने वाले पेड़ लगाने में प्रगतिशील कदम उठाए गए हैं। खेतों के अन्दर हल्की छाया वाले एवं तेजी से बढ़ने वाले पेड़ जैसे यूकेलिप्टस, पोपलर आदि लगाए जाते हैं। इनसे उच्च गुणवत्ता वाले फर्नीचर के लिए लकड़ी, ईंधन एवं चारा आदि प्राप्त होते हैं। इस तरह के वृक्षारोपण की पारम्परिक प्रथा खासकर पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश एवं अन्य कई राज्यों में देखी जाती है।

चित्र 6ः कृषि वानिकी में बहुउद्देशीय वृक्षारोपण

कृषि वानिकी के विस्तार के लिए सार्वजनिक निजी भागीदारी

भारत में कृषि वानिकी का बड़े पैमाने पर विस्तार हुआ है। कृषि वानिकी के उत्पादकों को बाजार सुनिश्चित करने लिए निजी क्षेत्र द्वारा समर्थन किया गया है। तमिलनाडु (तमिलनाडु न्यूज प्रिंट लिमिटेड), आंध्र प्रदेश (आईटीसी पेपर बोर्ड), गुजरात और उड़ीसा (जेके पेपर मिल्स), उत्तर प्रदेश (वेस्ट कोस्ट पेपर मिल) में लुगदी एवं कागज मिलों के कई सफल कृषि वानिकी म डल स्थापित किए गए हैं। हरियाणा (यमुनानगर) और उत्तराखंड (रुद्रपुर) में प्लाईवुड उद्योग, सिंधु गंगा के मैदानी क्षेत्र में अन्य लकड़ी आधारित उद्योग (विमको लिमिटेड), छत्तीसगढ़, झारखंड में गम एवं रेजिन, मध्य प्रदेश में तेंदु, पूर्वोत्तर भारत में इलायची, केरल में होमगार्डन आदि क्षेत्रीय-विशिष्ट मॉडल अनुबन्ध खेती के माध्यम से किसानों के कृषि वानिकी उत्पादों के लिए बाजार उपलब्धता में मदद मिलती है। सार्वजनिक निजी भागीदारी से गुणवत्तापूर्ण रोपण सामग्री के उत्पादन, आपूर्ति, भूमि विकास गतिविधियाँ, कृषि उपज की वापस खरीद योजनाएँ, अनुसंधान एवं विस्तार गतिविधियाँ आदि कृषि वानिकी के विकास के अवसर प्रदान करने की अपार संभावनाएं हैं।

राष्ट्रीय कृषि वानिकी नीति

भारत की राष्ट्रीय कृषि वानिकी नीति एक व्यापक नीतिगत ढाँचा है, जिसे जलवायु परिवर्तन के प्रभाव को कम करते हुए कृषि उत्पादकता को अधिकतम करके कृषि आजीविका में सुधार के लिए तैयार किया गया है। भारत वर्ष 2014 में 'राष्ट्रीय कृषि वानिकी नीति' तैयार करने वाला दुनिया का पहला देश बन गया। इसके बाद उठाए गए अहम कदम के तहत 'कृषि वानिकी के लिए उप मिशन' वर्ष 2015 में शुरू किया गया, ताकि किसानों को फसलों के

साथ-साथ वृक्षारोपण के लिए भी प्रोत्साहित करने में राज्यों की सहायता की जा सके। कृषि जलवायु क्षेत्र-वार कृषि वानिकी मॉडलों को भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद और भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद सहित विभिन्न अनुसंधान संस्थानों द्वारा विकसित किया गया है। यह योजना वर्तमान में देश के 21 राज्यों में लागू की जा रही है। कृषि भूमि पर वृक्षारोपण को प्रोसाहित करने और विस्तार करने के लिए, "फसल और फसल प्रणाली" के साथ "हर मेढ़ पर पेड़" के आदर्श वाक्य के साथ कृषि वानिकी (एस एम ए एफ) उप-मिशन 2016-17 में शुरू किया गया है। वर्तमान में यह योजना 20 राज्यों में लागू की जा रही है। इस मिशन के तहत, लघु मध्यम और दीर्घकालिक प्राप्ति वाली बहुउद्देशीय वृक्ष प्रजातियों को प्रोत्साहित किया जाता है, ताकि किसानों को नियमित अंतराल पर फल, चारा, औषधि, लकड़ी आदि से अतिरिक्त आमदनी मिल सके। नए क्षेत्रों में कृषि वानिकी के विकास का अन्वेषण करने के लिए राष्ट्रीय औषधीय संयंत्र बोर्ड (एन एम पी बी), केंद्रीय सिल्क बोर्ड, आईसीएआर, लकड़ी आधारित पेपर और प्लाईवुड उद्योगों जैसे संगठनों के साथ सम्पर्क स्थापित किया गया है।

चित्र 6: चारा फसल के साथ वृक्षारोपण

कृषि वानिकी के लाभ

जलवायु परिवर्तन अब कृषि उत्पादन और खाद्य सुरक्षा के लिए सबसे बड़ी चुनौतियों में से एक है। इसलिए, किसानों को खाद्य सुरक्षा पर जलवायु परिवर्तन के प्रतिकूल प्रभावों से बचने के लिए कृषि वानिकी जैसी जलवायु स्मार्ट कृषि पद्धतियों को अपनाना होगा। डी एफ आई समिति की एक रिपोर्ट के अनुसार कुछ क्षेत्रों को अनाज प्रधान से उच्च मूल्य की उपज में स्थानांतरित करने से किसानों की आमदनी में काफी वृद्धि हो सकती है। रिपोर्ट में यह भी दर्शाया गया है कि इससे जल उपयोग दक्षता और मृदा स्वास्थ्य में स्थिरता भी आएगी। मौजूदा फसल पद्धति/प्रणाली गन्ना, धान एवं गेहूँ की ओर झुका हुआ है जिसके कारण हमारे देश के कई हिस्सों के भूजल संसाधनों की व्यापक दर में कमी आई है। इस प्रणाली में बदलाव करने के लिए कृषि वानिकी एक सशक्त विकल्प साबित हो सकता है। देश में कृषिवानिकी के अंगीकरण से अनेकों लाभ होते हैं जो निम्नवत है।

- बहुउद्देशीय वृक्षों से चारा, फल, सब्जियाँ, फलियाँ, ईंधन, इमारती व जलावन की लकड़ी, रेशा, गोंद एवं खाद आदि प्राप्त होते हैं।
- कृषि-वानिकी से भूमि कटाव की रोकथाम, भू एवं जल संरक्षण करके मृदा की उर्वराशक्ति में वृद्धि कर सकते हैं।
- वर्ष भर कार्य की उपलब्धता होने के कारण शहरों की ओर होने वाले युवकों के पलायन को रोका जा सकता है।
- इस पद्धति से वर्ष भर पशुओं को चारे की उपलब्धता बनी रहती है।
- कृषि वानिकी कृषि भूमि को बाढ़, सूखा एवं जलवायु परिवर्तन जैसी मौसमीय घटनाओं का सामना करने में सक्षम बनाती है।
- भूमि में आवश्यक सभी पोषक तत्व होने के कारण रासायनिक उर्वरकों पर किसानों की निर्भरता को भी कम किया जा सकता है।
- कृषि एवं पशुपालन आधारित कुटीर एवं मध्यम उद्योगों को बढ़ावा मिलता है।
- इस पद्धति का पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी संतुलन बनाए रखने में महत्वपूर्ण योगदान है।
- ऊसर, बीहड़ व बेकार पड़ी बंजर एवं अनुपयोगी भूमि को बहुउद्देशीय वृक्ष एवं घास लगाकर उपयोग में लाया जा सकता है।
- फसल और वृक्ष उत्पादों की पैदावार में वृद्धि एवं स्थिरता सतत् रोजगार और अधिक आय से ग्रामीण जीवन स्तर में सुधार होता है।
- खाद्य उत्पादों की गुणवत्ता एवं विविधता में वृद्धि के कारण पोषण और स्वास्थ्य में सुधार होता है।
- कृषिवानिकी से मिट्टी की सतह का कम तापमान, मल्चिंग एवं छायांकन के संयोजन के माध्यम से मिट्टी की नमी में वाष्पीकरण कम करके भूमि के माइक्रोक्लाइमेट में सुधार किया जा सकता है।

भारत में कृषि वानिकी का भविष्य

वर्ष 1960 के दशक में हरित क्रांति के बाद धान एवं गेहूँ की बौनी किस्मों से कृषि के तीव्रगति से विस्तार ने भारत को खाद्यान्न उत्पादन में आत्मनिर्भर बना दिया। आधुनिक कृषि में उच्च उत्पादन

के लिए संसाधनों के असंतुलित उपयोग से कृषि द्वारा प्रदान की जाने वाली पारिस्थितिकी तंत्र सेवाओं का ह्रास हो रहा है। कई वैकल्पिक भूमि उपयोग प्रणालियाँ में से केवल कृषि वानिकी विभिन्न पारिस्थितिक तंत्र सेवाओं की सुरक्षा एवं वृद्धि कर सकती हैं। अनेक अध्ययनों में जैव विविधता के संरक्षण, प्राकृतिक संसाधनों के सतत् उपयोग एवं विभिन्न पारिस्थितिक तंत्र सेवाएं प्रदान करने में कृषि वानिकी के महत्व को दर्शाया गया है। कृषि वानिकी देश में भूमि एवं जल संसाधनों के लगातार कम होने एवं जलवायु परिवर्तन बावजूद भोजन, चारा, औषधी, ईंधन एवं इमारती लकड़ी इत्यादि की माँग को पूरा करने की क्षमता रखती है।

भारत में कृषि वानिकी की चुनौतियाँ

कृषि वानिकी प्रणाली सबसे प्रसिद्ध पारम्परिक प्रथाओं में से एक है। इसकी निर्भरता को कम करने, कृषि प्रणालियों के लचीलेपन को बढ़ाने और जलवायु सम्बन्धी जोखिमों के प्रति घरों को मजबूत करने में महत्वपूर्ण भूमिका है। लेकिन भारत में कई चुनौतियाँ कृषि वानिकी के लाभों को प्रभावित करती हैं। भारत में कृषि वानिकी की विशाल क्षमता के बावजूद इसके अंगीकरण की दर अभी भी बहुत कम है। हमारे देश में बेहतर रोपण सामग्री की कमी, अपर्याप्त शोध, बाजार के बुनियादी ढाँचे की कमी, पेड़ की कटाई के संबंध में निराशाजनक कानून, लकड़ी परिवहन एवं प्रसंस्करण आदि समस्याओं के कारण कृषि वानिकी से होने वाले लाभों से किसान वंचित रह जाते हैं।

निष्कर्ष

कृषि वानिकी किसानों और ग्रामीण लोगों के लिए समृद्धि का प्रमुख मार्ग है, जिससे रोजगार और राजस्व का सृजन होता है। कृषि वानिकी का उद्देश्य जलवायु परिवर्तन के दौर में गरीब सीमांत और छोटे किसानों की आजीविका में सुधार के साथ-साथ उसे बनाए रखना है। देश की खाद्य और पोषण सुरक्षा व अन्य बुनियादी जरूरतों को स्थायी आधार पर पूरा करना तथा किसानों को जलवायु परिवर्तन के प्रतिकूल प्रभाव से बचाना है। कृषि वानिकी कृषि फसलों के साथ वृक्षों का एकीकरण पर्यावरण में सुधार के अतिरिक्त स्थिर आय, भूमि उपयोग, ग्रामीण कौशल के विविधीकरण, उच्चगुणवत्ता युक्त भोजन, ईंधन, पशु चारा एवं सुरक्षा के माध्यम से स्थानीय अर्थव्यवस्था में सुधार करने की क्षमता रखती है। यह देश में वन और वृक्षों के आवरण को वांछनीय स्तर तक बढ़ाने का सही विकल्प है।

बुंदेलखंड के लिए जलवायु अनुरूप कृषि तकनीकी

अनिल कुमार दोहरे, गौतम सिंह, भगवान दास कुशवाहा एवं लखन लाल अहिरवार
भा.कृ.अनु.प.-भारतीय मृदा एवं जल संरक्षण अनुसन्धान केन्द्र, दतिया, मध्य प्रदेश
ई-मेलः drdm-icar@gmail.com

सारांशः

विगत 5 दशकों में किसानों की कड़ी मेहनत एवं आधुनिक तकनीकों के माध्यम से खाद्यान्न उत्पादन के क्षेत्र में आत्मनिर्भरता तो हो गई है किन्तु इसके साथ ही कृषि आदानों के अनियत्रिंत एवं अत्यधिक प्रयोग से रसायनिक उर्वरकों, कीटनाशकों का उपयोग भी बढ़ गया है तथा कृषि उत्पादन लागत में बढ़ोतरी हो रही है। जिसके परिणामस्वरूप हमारे अन्नदाता की आर्थिक दशा दिन प्रति दिन, साल दर साल खराब होती जा रही है। इसके अलावा मौसम में परिवर्तन के कारण तापमान में वृद्धि, वर्षा की अनियमितता तथा कृषि क्षेत्रों में धुंध के कारण भी फसल उत्पादन प्रभावित हो रहा है। ऐसे में आवश्यकता इस बात की है कि हम ऐसी कृषि पद्धति को अपनाएं जिसमें बदलते मौसम का प्रभाव कृषि पर कम हो जिससे कृषि उत्पादकता लाभ दीर्घकालिक हो तथा प्राकृतिक संसाधनों का पर्याप्त सरंक्षण हो सके। जलवायु अनुरूप कृषि पद्धतियाँ ऐसी परिस्थितियों में कृषि उपयोगी साबित हो सकती हैं। प्रस्तुत आलेख में बुंदेलखंड क्षेत्रों में अपनाई जा सकने वाली जलवायु अनुरूप कृषि पद्धतियों की चर्चा की गई है।

प्रस्तावनाः

विगत दो दशकों के दौरान बुंदेलखंड क्षेत्र में गेहूँ व धान जैसी प्रमुख खाद्यान्न फसलों का रकबा बढ़ा है परंतु उन्नत बीजों की उपलब्धता और बेहतर कृषि प्रबधंन के बावजदू कृषि उत्पादकता में वृधि लगभग कम ही देखी गई है। आज जब भूजल प्रदषूण, मृदा उर्वरता में कमी, जैव विविधता में कमी, जलवायु परिवर्तन, तथा मौसम में बदलाव के कारण कीट-व्याधियों का प्रकोप लगातार बढ़ता जा रहा है, ऐसी परिस्थितियों में कृषि पद्धति के दीर्घकालिक व निरंतरता पर एक बड़ा प्रश्नचिन्ह लगता है। भूगर्भ जलस्तर में गिरावट तथा उपलब्ध पानी का कृषि के अलावा अन्य कार्यों में प्रयुक्त होना बुंदेलखंड क्षेत्र में वर्तमान कृषि के लिए अत्यतं चिंता का कारण है। विभिन्न वैज्ञानिक अनुसंधानों में यह बात स्पष्ट हो चुकी है कि जलवायु परिवर्तन हो रहा है और इसका दीर्घकालिक प्रभाव भी कृषि पर पड़ना आरंभ हो गया है। ऐसे में आवश्यकता इस बात की है कि ऐसी तकनीकों का विकास किया जाए जिससे कम से कम क्षेत्रफल में अधिक से अधिक फसल ली जा सके साथ ही इन फसलों पर प्रतिकूल वातावरण परिस्थितियों का कम से कम प्रभाव पड़े जिससे देश की बढ़ती जनसंख्या के लिए समुचित भोजन व्यवस्था का प्रबंधन किया जा सके साथ ही प्राकृतिक संसाधनों का कम से कम दोहन कर उनका सरंक्षण किया जा सके।

जलवायु अनुरूप कृषि की आवश्यकता

जलवायु परिवर्तन से कृषि में उत्पादन की कमी के विभिन्न कारण हैं-

- जलवायु परिवर्तन के कारण कुछ जगह पर बाढ़ तो कहीं सूखा पड़ जाता है जिससे फसलों को काफी ज्यादा नुकसान झेलना पड़ता है और अकाल की नौबत आ जाती है। बाढ़ की स्थिति में फसलों का डूब के गल जाना तथा सूखे में जल की कमी से फसलों का नष्ट हो जाना आज बहुतायत देखने को मिल रहा है।
- कहीं अधिक तापमान के कारण विभिन्न सब्जियों व फलों की पैदावार प्रभावित हो रही है तो कहीं कम तापमान के कारण फसलों में अंकुरण की समस्या आ रही है।
- फसलों पर प्रत्यक्ष प्रभाव के अतिरिक्त, जलवायु परिवर्तन से मृदा में होने वाली विभिन्न जैव रासायनिक क्रियाएं तथा मृदा जल का संतुलन प्रभावित होता है। मृदा जल में संतुलन की कमी होने पर मृदाएँ शुष्क हो कर अधिक सुसुप्त हो जाती है और फसल में सिंचाई की माँग बढ़ाती है जिससे भूजल स्तर गिरता रहता है।
- जलवायु परिवर्तन का प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष प्रभाव कृषि पर भी पड़ता है और इसके मुख्य उदाहरण खरपतवार का बढ़ना फसलों तथा खरपतवार के बीच स्पर्धा को तेज कर देना वही कीट पतंगों और रोग जनको का बढ़ना है।
- भूमि में आवश्यक पोषक तत्वों की कमी के साथ ही मृदा के लाभकारी जीवाणु की संख्या में कमी तथा उनकी क्रियाशीलता पर विपरीत प्रभाव पड़ता है जिससे मृदा का C:N अनुपात निरंतर गिरता रहता है।

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि किस प्रकार जलवायु परिवर्तन न केवल प्रत्यक्ष रूप से फसलों को प्रभावित करता है बल्कि अप्रत्यक्ष रूप से भूगर्भ जल, मृदा उत्पादकता एवं परिस्थितिकी संतुलन को भी प्रभावित करता है जिसका सीधा प्रभाव किसी और

कृषि उत्पादकता पर पड़ता है। ऐसे में कृषि उत्पादकता को संरक्षित रखने एवं पर्यावरण में संतुलन बनाए रखने के लिए कृषि में जलवायु अनुरूप परिवर्तन अपनाया जाना चाहिए तथा प्राथमिक स्तर पर पुराने समय से चली आ रही मौसम संबंधी किसानों की मान्यताओं को बदलकर जलवायु का सही अनुमान बताने वाली तकनीतियों को बढ़ावा देना चाहिए।

जलवायु अनुरूप कृषि पद्धतिः

जलवायु अनुरूप कृषि पद्धति ऐसी कृषि पद्धति है जिसमें कृषिगत लागत को कम रखते हुए अधिक लाभ व उत्पादकता प्राप्त की जा सकती है साथ ही प्राकृतिक संसाधनों जैसे मृदा, जल, पर्यावरण, जैविक कारकों को सरंक्षित कर वृद्धि की जा सकती है। इसमें ऐसी कृषि क्रियाएं जिसमें उदाहरण के तौर पर शून्य कर्षण या अति न्यून कर्षण के साथ-साथ कृषि रसायन एवं अकार्बनिक स्रोतों का संतुलित व समुचित प्रयोग होता है ताकि प्राकृतिक संसाधनों का क्षरण कम से कम हो और पर्यावरण पर विपरीत प्रभाव ना पड़े।

बुंदेलखंड के लिए जलवायु अनुरूप कृषि तकनीकीः

1. **जीरो टिलेजः** इसमें प्राथमिक जुताई ही नहीं करते हैं तथा दूसरी जुताई मात्र बुवाई की पंक्तियों में की जाती है। इस विधि के द्वारा धान व गेहूँ फसल चक्र में धान की कटाई उपरांत खेत में नमी का प्रयोग करते हुए गेहूँ की फसल जीरो ड्रिल मशीन से की जाती है जिससे किसान की समय से बुवाई हो सकती है। इससे जुताई लागत कम लगती है और मृदा में C:N को बढ़ावा मिलता है।

2. **न्यूनतम कर्षणः** ऐसी फसलों जिनमें जुताई कि आवश्यकता है, उनमें इस विधि का उपयोग किया जाता है जिससे बीज के अच्छी पैदावार हेतु उचित माध्यम तैयार हो जाए साथ ही लागत व ऊर्जा का कम ह्रास न्यून हो। मुख्यतया इसमें प्राथमिक जुताई के उपरांत दूसरी जुताई आवश्यकतानुसार करते हैं।

3. **रिज फरो पद्धतिः** इस विधि में खेत में छोटी-छोटी मेड नाली की क्यारियां बनाई जाती हैं तथा बुवाई मेड पर की जाती है जिससे अत्यधिक वर्षा की स्थिति में जल की निकासी आसानी से की जा सकती है तथा अल्प वर्षा की स्थिति में नमी का सरंक्षण भी होता है और फसल सुरक्षित रहती है साथ ही बीज लागत कम व अंकुरण अच्छा होता है।

4. **रेज बेडः** इस विधि में रेज बेड प्लान्टर से चौड़ी मेढ़ बनाई जाती है जिसकी ऊँचाई कम होती है। फसल की बुवाई बेड पर की जाती है जिसमें फसल पर मौसम प्रतिकूल दशाओं का प्रभाव कम पड़ता है जैसे अति वर्षा व तेज हवा के समय पौधे के गिरने की सम्भावना कम होती है साथ ही रेज बेड का पौधा मजबूत होता है जिससे अधिक पैदावार मिलती है।

5. **सूखा रोधी फसलों का उगाया जानाः** बुंदेलखंड क्षेत्रों में पर्याप्त वर्षा के बाद भी पानी की कमी रहती है। ऐसे में सूखा रोधी फसलें जैसे- ज्वार, बाजरा, अरहर, काबुली चना आदि, जो कम वर्षा की स्थिति में भी उगाई जा सकती हैं को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। इनमें भी इन फसलों कि ऐसी किस्मों को प्राथमिकता दी जानी चाहिए जिनका उत्पादन समय भी कम हो और सूखा रोधी हों जिससे सूखे की स्थिति में भी किसान की कम से कम 50% उत्पादन सुनिश्चित की जा सके।

6. **फसल बुवाई व रोपण के समय में बदलावः** कई वैज्ञानिक शोधों में यह बात सामने आई है कि फसल बुवाई व रोपण के समय में बदलाव करने से बदलते तापमान के प्रभाव को कम किया जा सकता है और जलवायु परिवर्तन से होने वाले नुकसान से बचा जा सकता है।

7. **मृदा में जैविक कार्बन को बढ़ावा देनाः** मृदा में जैवांश की मात्रा न केवल मृदा की जल धारण क्षमता को बढ़ाती है बल्कि मृदा में उपलब्ध सूक्ष्मजीवों के लिए भोज्य का कार्य भी करती है। इससे मृदा में सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी नहीं होने पाती और मृदा का स्वास्थ एवं उत्पादकता अक्षुण बनी रहती है। बुंदेलखंड क्षेत्रों में जहाँ वर्षा का अभाव है और मृदा में जैवांश की कमी है, मृदा में जैविक कार्बन को बढ़ाया जाना महत्वपूर्ण लाभकारी सिद्ध हो सकता है।

8. **जल संरक्षण तकनीकियों का प्रयोगः** जलवायु परिवर्तन से कृषि पर अधिक प्रभाव ना पड़े तो इसके लिए हमें जल सरंक्षण पर ध्यान देना होगा इससे यह फायदा होगा कि सुखा पड़ने जैसी स्थिति में इस सरंक्षित जल का इस्तेमाल किया जा सकता है। तालाब, चेक डैम, माइक्रो वॉटरशेड आदि जल संरक्षण हेतु महत्वपूर्ण इकाईयाँ हो सकती हैं। इसके साथ ही अपशिष्ट जल को दोबारा प्रयोग करना, लघु सिंचाई तकनीकियों जैसे ड्रिप एवं सूक्ष्म सिंचाई आदि जल संचयन में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती हैं।

9. **रिस्पांस फॉर्मिंगः** रिस्पांस फॉर्मिंग का अर्थ है, स्थानिक मौसम की जानकारी के आधार पर तकनीकी विशषेज्ञों से सलाह लेकर खेती की उचित कार्य विधि को अपनाना। आज तकनीकी के समय में घर बैठे ही आगे आने वाले दिनों के मौसम के बारे में जानकारी मिल जाती है साथ ही भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के विभिन्न अनुसंधान केन्द्रों तथा

केन्द्रीय एवं राज्य कृषि विश्वविद्यालयों द्वारा मौसम के अनुरूप कृषि की जानकारी भी समय समय पर दी जाती है। किसान भाई इन जानकारी के आधार पर कृषि कर के प्रतिकूल मौसम के कारण कृषि हानि को कम कर सकते हैं।

10. **कृषि विविधिकरणः** आज के समय किसान भाईयों का केवल एक ही कृषि आय पर आश्रित होना अनिश्चितता को बढ़ावा देता है। किसान भाईयों को फसल उत्पादन के साथ ही, बागवानी, फूलों की खेती, पशुपालन, शहद उत्पादन, कृषि वानिकी आदि विविध गतिविधियो को भी अपनी आय का हिस्सा बनाना चाहिए जिससे किसी विपरीत परिस्थिति में किसी एक स्रोत से आय को हानि होती है तो दूसरे स्रोत से उसकी भरपाई की जा सके।

इन सब तकनीतियों के अलावा फसलों में अतंर रखना, एक ही फसल की जगह कई फसल वाली प्रणालियों को अपनाना, फसल चक्रीकरण, सोलर पम्प आदि का प्रयोग, ड्रिप स्प्रिंकलर जैसी तकनीकियों को अपनाकर किसान विपरीत मौसम परिस्थितियों में भी आय और पर्यावरण में होने वाले नुकसान को कम किया जा सकता है। फसलों का बीमा करवाना मौसम की विपरीत परिस्थितियों में जोखिम को कम करता है अतः इसे अपनाकर विपरीत परिस्थितियों में नुकसान से बचा जा सकता है।

निष्कर्षः

मौसम परिवर्तन एक प्राकृतिक घटना है जिसे रोका नहीं जा सकता और निश्चित रूप से इसका अच्छा या बुरा प्रभाव कृषि पर भी पड़ेगा। बुंदेलखंड में जहाँ एक ओर उच्च तापमान एवं जल की कमी की से कृषि की सीमाएं हैं वहीं कृषि विविधिकरण जैसे बागवानी, कृषि वानिकी, पशु पालन एवं मत्स्य पालन आदि की प्रबल संभावनाएं भी हैं। ऐसे में आवश्यकता सिर्फ इस बात की है कि सीमाओं कि पहचान कर उन्हें संभावनाओं में विकसित किया जाए और इससे न केवल विपरीत मौसम में कृषि आय सुनिश्चित की जा सकेगी बल्कि पर्यावरण को हो रही क्षति को भी कम किया जा सकेगा।

जलागम प्रबंधन के साथ पारिस्थितिकी संतुलन

गौतम सिंह, दीपक मौर्य, अनिल कुमार दोहरे, भगवान दास कुशवाह एवं लखन लाल अहिरवार

भा.कृ.अनु.प.-भारतीय मृदा एवं जल संरक्षण अनुसन्धान केन्द्र, दतिया, मध्य प्रदेश

ई-मेलः gautam.agmtech@gmail.com

सारांशः

पुरानी कृषि प्रणाली में मिट्टी, पानी, वनों और जलवायु जैसे प्राकृतिक स्रोतों का ह्रास जो जलागम की संरचना को प्रभावित करता है जिससे कृषि में अस्थिरता आती है जिस कारण उत्पादकता, लाभप्रदता, पारिस्थितिक तंत्र में असंतुलन और पर्यावरण सुरक्षा में गिरावट आ रही है। इन सभी समस्याओं के निदान के लिए जलागम प्रबंधन आवश्यक है और इसके प्रबंधन से ही जलागम पारिस्थितिकी का संतुलन बना रहता है। किसी भी जलागम की संरचनात्मक और कार्यात्मक विशेषताएँ जो मानव और प्राकृति के बीच में संतुलन बना कर रखती है। जलागम प्रबंधन से पहले इसकी संरचनात्मक और कार्यात्मक विशेषताओं को जानना बहुत जरुरी है जो मानवीय गतिविधियों द्वारा प्रभावित होती है और इसकी पारिस्थितिकी क्या होती है। इसके आलावा उसके विभिन्न भौगोलिक पैमाने कौन-कौन से होते है और वह कैसे काम करते है जिससे जलागम में पारिस्थितिकी संतुलन स्थापित किया जा सकता है।

प्रस्तावना

आज जिस प्रकार निरंतर जनसंख्या बढ़ रही है और कृषि योग्य भूमि भी जनसंख्या के दबाव के कारण कम होती जा रही है और दिन प्रतिदिन मानवजनित गतिविधियाँ द्वारा प्रोंतिक संसाधनों जैसे मिट्टी, पानी, वन आदि का ह्रास तेजी से हो रहा है जिससे भारत सहित विश्व में खाद्यान्न संकट एवं वैश्विक पर्यावरण के लिए संकट तेजी से बढ़ रहा है। किसी जलागम के प्राकृतिक संसाधनों के साथ ज्यादा छेड़-छाड़ से जलवायु परिवर्तन और पारिस्थितिकी संतुलन बिगड़ रहा है जिसके फलस्वरुप प्राकृतिक संसाधनों का क्षरण और कृषि उत्पादकता में कमी के साथ मानवीय जीवन पर भी संकट उत्पन्न हो गया है। अगर जलागम की प्राकृतिक प्रक्रियाएँ जैसे वर्षा अपवाह, भूजल पुनर्भरण, तलछट परिवहन, वन, आकार, ढाल आदि का ठीक प्रकार से प्रयोग करके प्राकृतिक संसाधनों के क्षरण को रोका जा सकता है और कृषि उत्पादकता को भी बढ़ा सकते है। भूमि संरक्षण व जल संचयन के कार्य जिसके अंतर्गत कच्चे चेकडैम निर्माण, बाँस व विशेष प्रजाति के चारे रोपण की तकनीकीयो, कृषि पद्दतियों में बदलाव करके और जलागम क्षेत्र में उपयोगी प्राकृतिक प्रक्रियाओं के बारे में जानकारी लेकर स्वयं को और अपनी संपत्ति को नुकसान से बचाकर प्राकृतिक प्रक्रियाओं का लाभ प्राप्त कर सकते है और उस जलागम का प्रबंध अच्छी तरह से कर सके जो उस जलागम व जलागम पारिस्थितिकी के संतुलन के लिए महत्वपूर्ण है।

जलागम क्षेत्र और परिस्थितिकी संतुलन को प्रभावित करने वाले कारक

जलागम क्षेत्र का आकार, वर्षा, ढाल, मिट्टी, वनस्पति, समुद्र तल से ऊँचाई आदि कारक प्रभावित करते है इसके आलावा उस क्षेत्र में कितनी वर्षा हुई, उसमें से कितना वर्षा जल संचित हुआ और कितना बह कर जलागम से चला गया। जलागम की आकृति के आधार पर वह लम्बे या व्यापक चौड़े हो सकते है जो उसके विभिन्न बनावटें और संरचनाओं को निर्धारित करते है। जलागम का ढाल वर्षा जल के वितरण एवं गति का नियंत्रित करता है और जल निकास उसके जल बहाव की गति एवं अपरदन के व्यवहार को बताता है। जलागम क्षेत्र में उगने वाले अनेकों प्रकार के पौधे और उगाई गई फसले भी उस जलागम क्षेत्र और परिस्तिथिकी संतुलन को प्रभावित करती है। किसी भी जलागम क्षेत्र और उसके पारिस्थितिक तंत्र की संरचनात्मक या कार्यात्मक विशेषताओं को प्रभावित करने वाले कारको के अतिरिक्त यह समझने की भी आवश्यकता है कि उसके तत्व क्या है और वे कैसे जलागम को प्रभावित करते है।

जलागम के भौतिक तत्व

जलागम के भौतिक तत्व किसी भी पारिस्थितिक तंत्र को प्रभावित कर सकते है जिसमें मुख्यता जलवायु, वनस्पति, धाराप्रवाह व उसका परिमाण और समय, जल तापमान, भू-आकृति, हाइड्रोल जिंक चक्र प्रमुख है। जलागम की जलवायु जिसमें तापमान, आर्द्रता, वर्षण, हवाओं की स्थितियों को एक विस्तारित अवधि में मापा जाता है। जबकि, भू-आकृति उस जलागम में समय-समय पर होने वाले बदलाव को दर्शाता है। किसी भी पारिस्थितिक तंत्र में अनेकों चक्र होते है जिसमें एक चक्र हो सकते है जिसमे से एक हाइड्रोल जिंक चक्र है जो वाष्पीकरण, संघनन, वर्षा और अपवाह की कभी ना खत्म होने वाली एक प्राकृतिक सौर-चालित प्रक्रिया है।

जलागम के जैविक तत्व

इसके अंतर्गत जीवित पौधे, मनुष्य और पशु समुदायों में आते है जो उनके पारिस्थितिकी, प्रजातियाँ, जनसंख्या, समुदाय,

आवास, पारिस्थितिकी तंत्र, बायोस्फीयर आदि आते है जो जलागम को सीधे प्रभावित करते है। मृदा पारिस्थितिकी में मिट्टी के तीन बुनियादी गुण रंग, संरचना और बनावट होते हैं जो मिट्टी की पहचान करने और उसका वर्गीकरण में सहायता करते है। मिट्टी का रंग खनिज संरचना, रासायनिक संरचना, कार्बनिक पदार्थों की सापेक्ष मात्रा और पानी की मात्रा को दर्शाता है। मिट्टी की संरचना से तात्पर्य है कि मिट्टी खुद को किस प्रकार व्यवस्थित करती है। मिट्टी की बनावट रेत, गाद और मिट्टी के सापेक्ष अनुपात का मिश्रण होता है जो अधिकांश मिट्टी के अलग-अलग प्रतिशत के रूप में पाए जाते है।

प्राकृतिक प्रणाली

प्राकृतिक प्रणालियाँ जलागम प्रबंधन में इस बात पर जोर देती है कि जलागम का व्यवहार कैसा है और वह कैसे काम करता है। जलागम के व्यवहार से ही हम प्राकृतिक संसाधनों का कम या अधिक प्रयोग कर सकते है की कुंजी है इसके परिणामस्वरूप मानव और प्राकृतिक समुदायों को कम लाभ प्राप्त होता है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि प्राकृतिक प्रणाली को पहचानना और प्रणाली के महत्वपूर्ण घटकों और कार्यो की सुरक्षा के लिए काम करना स्थायी जलागम प्रबंधन के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। जलागम में अजैविक और जैविक घटकों को जोड़ने वाली प्राकृतिक प्रक्रियाएं होती है जो परस्पर क्रिया करने वाले घटको को एक साथ लाकर नए उत्पाद तैयार करते है जो जैविक समुदाय और नए ऊर्जा के स्रोत बनाते है।

जलागम संरचना

इसमें बहते पानी मुख्य रूप से नदियाँ और संबंधित नदी के आर्द्रभूमि और नदीतट के साथ धाराएँ, झीलें और संबंधित बेसिन-प्रकार की आर्द्रभूमि और तटभूमि, और जलागम के ऊपरी क्षेत्र संरचना शामिल है। स्थिर पानी में आम तौर पर झीलें, तालाब, ग्लेशियल, ज्वालामुखीय झीलें, तैरने के तालाब आदि शामिल होते हैं। एक झील की संरचना का उसके जैविक, रासायनिक और भौतिक गुणों पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है।

जलागम के आवश्यक कार्य

जलागम में होने वाले कुछ आवश्यक कार्य है जिसमे परिवहन और भंडारण प्रमुख है जो पानी, ऊर्जा, जीवों, तलछट (सेडीमेंट) और अन्य सामग्रियों का परिवहन और भण्डारण करता है। इसका मुख्य कार्य पानी को भूमि की ऊपरी सतह से जल निकास तक पहुँचाना है। चक्र और परिवर्तन जलागम में प्राकृतिक तत्वों का अपना एक चक्र और परिवर्तन होता है जिसमे कार्बन, नाइट्रोजन और फॉस्फोरस जैसे तत्वों में जलागम के सबसे महत्वपूर्ण जैव-भूरासायनिक चक्र शामिल हैं। इन चक्रों में परिवहन और भंडारण, रूप में परिवर्तन, रासायनिक परिवर्तन और अवशोषण होता है। पोषक तत्वो का बढ़ना पारिस्थितिक तंत्र में ऊर्जा और पोषक तत्वों कार्बन, नाइट्रोजन और फॉस्फोरस का प्रवाह एक कभी ना बंद होने वाले चक्र में होता है। अपघटन किसी जलागम क्षेत्र की वह प्रक्रिया है जिसमे अधिकांशतः सूक्ष्मजीवों (कवक, बैक्टीरिया और प्रोटोजोआ) द्वारा पौधों और जानवरों को सड़ाने और वातावरण को साफ करते है और नए जीवन के लिए जगह बनाते हैं। वे फसलों के नमी, मिट्टी और हवा में विभिन्न पोषक तत्वों को बढ़ाने में योगदान करते है।

जलागम प्रबंधन क्यों आवश्यक है

भारत की ज्यादातर जनसंख्या लगभग 53 प्रतिशत कृषि और उससे सम्बंधित कार्यो पर आधारित है जिससे उनकी मूलभूत आवश्यकताएँ जैसे अनाज, ईंधन, चारा, पानी व रोजगार की पूर्ति होती है। लेकिन आज जिस तरह से खेती हो रही उससे न केवल मिटटी की उर्वरा शक्ति कम हो रही बल्कि प्राकृतिक संसाधनों का ह्रास बहुत तेजी से हो रहा है जिस कारण मनुष्य को अपना जीवन यापन करने में भी बहुत कठिनाई हो रही है। भारत के बुंदेलखंड जैसे हिस्से में जहाँ बारिश भी बहुत कम होती है उन क्षेत्रों में जलागम प्रबंधन बहुत आवश्यक है। नाबार्ड, पर्यावरण एवं वन मंत्रालय द्वारा एकीकृत वनीकरण एवं पारिस्थितिकी विकास परियोजना, ग्रामीण विकास मंत्रालय, केन्द्र सरकार प्रयोजित योजना आदि भारत में जलागम प्रबंधन का कार्य पिछले 6 दशकों से कर रहे है। बुंदेलखंड पैकेज से भूमि संरक्षण व जल संचयन के कार्य जिसके अंतर्गत कच्चे चेकडैम निर्माण, बंधियों के किनारे बिना कांटे वाले नागफनी, रामबांस, बांस व विशेष प्रजाति के चारे रोपण की तकनीकियों द्वारा किए गए। स्वस्थ जलागम क्षेत्र में अनेको पारिस्थितिकी तंत्र होते है जो अलग अलग कार्य करते है जिसमें पोषक चक्रण, कार्बन भंडारण, कटाव/अवसादन नियंत्रण, जैव विविधता में वृद्धि, मिट्टी निर्माण, वन्यजीव, जल भंडारण, जल निस्पंदन, बाढ़ नियंत्रण, भोजन, लकड़ी और मनोरंजन आदि साथ ही आक्रामक प्रजातियों, जलवायु परिवर्तन के प्रभाव और अन्य प्राकृतिक आपदाएं सम्मलित है जो सामाजिक, पर्यावरण और आर्थिक कल्याण के लिए आवश्यक है।

जलागम प्रबंधन कैसे करे

जलागम एक प्राकृतिक मेढ़ से घिरा क्षेत्र है जिसमे बहने वाला जल (अपवाह) एक ही निकास द्वार से होकर बहता है। एक जलागम के मुख्य प्राकृतिक स्रोत होते है जैसे भूमि, जल, वनस्पति एवं जैविक सम्पदा जिसमें मानव, पशु-पक्षी तथा वनस्पति भी शामिल है जो एक दूसरे से इस प्रकार जुड़े है कि एक में किए गये

परिवर्तन का असर दूसरे पर भी पड़ता है जिसके फलस्वरूप उनमें कुछ भी बदलाव होने पर हानिकारक एवं अवांछनीय परिणाम देते है। जलागम प्रबन्धन का मुख्य उद्देश्य है जलागम क्षेत्र में उपलब्ध प्राकृतिक श्रोतों से एक योजनाबद्ध, तालमेल बनाकर व क्रमबद्ध रूप में उच्चतम उत्पादन लेना तथा समाज को पूर्ण लाभ प्रदान कराना और न्यूनतम ह्रास हो। जलागम संतुलित तथा स्थिर होना चाहिए अर्थात प्रबन्धन क्रियाएं पर्यावरण पर विपरीत प्रभाव न डालें तथा जलागम का स्वास्थ्य भी बना रहे ताकि संतुलित जलागम प्रबंध से ही पारिस्थितिकी संतुलन बना रह सकता है।

जलागम प्रबंधन के लाभ

बुंदेलखंड क्षेत्र में जहाँ वार्षिक औसत वर्षा लगभग 840 मि. मी. होती है और अधिकांश किसान के पास कृषि योग्य भूमि भी कम है एसी स्थिति में जलागम प्रबंधन बहुत ही आवश्यक हो जाता है जिससे पारिस्थितिकी, सामाजिक, आर्थिक, पर्यावर्णीय, आदि लाभ होते है। जलागम प्रबंधन से पारिस्थितिकी संतुलन, पोषक चक्रण, कार्बन भंडारण, कटाव/अवसादन नियंत्रण, जैव विविधता में वृद्धि, मिट्टी निर्माण, वन्यजीव, जल भंडारण, जल निस्पंदन, बाढ़ नियंत्रण, भोजन, लकड़ी, और अन्य प्राकृतिक स्रोतो का संरक्षण होता है। साथ ही मानव के जीवन स्तर में सुधार और आर्थिक लाभ बढ़ जाता है। जलागम प्रबंधन से उस क्षेत्र की भौगोलिक संरचना जैसे ढाल, जलवायु, वनस्पति, धाराप्रवाह, तापमान आदि स्थिर बने रहते है साथ ही प्रदूषण मुक्त वातावरण से पर्यावरण संतुलन बना रहता है।

निष्कर्ष

आजादी के 76 साल होने के बाद भी हम अभी भी वही पुरानी कृषि पद्दत्तियों से ही खेती करते है इसके फलस्वरुप प्राकृतिक संसाधनों का गलत तरीके से दोहन हुआ जिसके साथ विभिन्न समस्याओं का भी जन्म हुआ है। इन समस्याओं के समाधान के लिए जिससे प्राकृतिक संसाधनों को बचाया जा सके उसके लिए जलागम प्रबंधन बहुत आवश्यक है। बुंदेलखंड क्षेत्र में जलागम प्रबंधन से पानी और मिट्टी के आलावा वनस्पतियों के संरक्षण से अधिक से अधिक लाभ प्राप्त करके अपने जीवन स्तर को बेहतर बना कर अपने लक्ष्य प्राप्त करने के साथ पारिस्थितिकी संतुलन कर सकते है।

कृषि क्षेत्र में नवाचार

1. **विश्व का पहला नैनो यूरिया तरल संयंत्रः** 28 मई, 2022 को, माननीय प्रधान मंत्री श्री नरेंद्र मोदी ने गुजरात के गाँधी नगर जिले के कलोल शहर के पास इफ्को द्वारा दुनिया के पहले नैनो यूरिया तरल संयंत्र का उद्घाटन किया। नैनो यूरिया में उच्च पोषक तत्व उपयोग दक्षता है और इसका उद्देश्य मिट्टी, जल और वायु प्रदूषण को कम करना है। इसमें 500 मिलीलीटर की बोतल में 40,000 मिलीग्राम/लीटर नाइट्रोजन होता है जो पारंपरिक यूरिया के एक बैग द्वारा प्रदान किए गए नाइट्रोजन पोषक तत्व के प्रभाव के बराबर है। **(स्रोतः टाइम्स ऑफ इंडिया)**

2. **भारत की पहली नरम गेहूँ किस्मः** पूसा सॉफ्ट व्हीट 1 (एच डी 3443) पूसा सॉफ्ट व्हीट 1 (एचडी 3443) में प्रोटीन की मात्रा (1.5%), ग्लूटेन का स्तर (8.9%) और उत्पादकता >5 टन प्रति हेक्टेयर है। गेहूँ की सबसे नरम किस्म बेकरी में सबसे अधिक उपयोग की जाती है। उदाहरण के लिए, बेकरी में कई केक, बिस्कुट आदि तैयार करने के लिए नरम किस्म के गेहूँ की आवश्यकता होती है। **(स्रोतः द हिंदू)**

3. **हरित धराः** आईसीएआर-नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ एनिमल न्यूट्रिशन एंड फिजियोलॉजी, बेंगलुरु, कर्नाटक ने मैसर्स को ''हरित धरा'' प्रौद्योगिकी का व्यवसायीकरण किया। साईदीप एक्सपोर्ट्स प्रा.। आज यहाँ एग्री-इनोवेट इंडिया के माध्यम से गैर-अनन्य आधार पर सीमित। डॉ. राघवेंद्र भट्ट, निदेशक, आईसीएआर-एनआईएएनपी, बेंगलुरु और श्री एम.आर. अरविंद, सीईओ, मेसर्स साईदीप एक्सपोर्ट्स प्रा. लिमिटेड ने फॉर्मूलेशन के निर्माण और बिक्री के लिए लाइसेंस देने के लिए अपने संबंधित संगठनों की ओर से समझौता ज्ञापन (एमओए) पर हस्ताक्षर किए। यह एक एंटी-मीथेनोजेनिक फीड सप्लीमेंट है जो टैनिफेरस प्राकृतिक फाइटो-संसाधनों का उपयोग करके तैयार किया गया है। यह पशुधन से मीथेन उत्सर्जन को कम करने और उत्पादकता बढ़ाने में मदद करता है। हरित धरा को खिलाने से उत्सर्जन में वृद्धि को कम करके प्रति दिन 0.4-0.5 किलोग्राम दूध की वृद्धि होती है और पोषक तत्वों के सेवन और पाचनशक्ति को प्रभावित नहीं करता है। हरित धारा को मवेशियों, भैंस और भेड़ों को खिलाया जा सकता है। हरित धरा एक पेटेंट लागू तकनीक है। **(स्रोतः आई सी ए आर)**

4. **थार वैभवः गुच्छे में फलत देने वाली कागजी नींबू की एक नई प्रजाति**

थार वैभव, केंद्रीय बागवानी प्रयोग स्थल (आईसीएआर-सीआईएएच), वेजलपुर, गोधरा, गुजरात में विकसित किया गया। फल रसदार (49%), अम्लीय (6.84%) कम बीज प्रति फल (6-8) के साथ है। यह रोपण के तीसरे वर्ष के दौरान फूल और फल देना शुरू कर देता है। यह पश्चिमी भारत में वर्षा आधारित गर्म अर्ध-शुष्क परिस्थितियों में रोपण के छठे वर्ष के दौरान 60.15 किग्रा./पौधा की औसत उपज देता है। गर्मियों में फल 125-135 दिनों में पकते हैं जबकि बरसात के मौसम में और सर्दियों के मौसम की फसल परिवेश भंडारण में उत्कृष्ट गुणवत्ता के साथ फल सेट से 145-155 दिन लग सकते हैं। औसतन, इसमें प्रति गुच्छा 3-9 फल लगते हैं और देश के कागजी नींबू उत्पादकों द्वारा ऐसी किस्मों की बहुत माँग है। **(स्रोतः भारतीय बागवानी)**

5. **सेब के बागों के लिए मूलवृन्त प्रसारण तकनीकी (आईसीएआर-सीआईटीएच):** इस तकनीक के हस्तक्षेप से हिमाचल प्रदेश के चम्बा जिले के नर्सरी उद्यमी श्री पवन कुमार गौतम के परिवार की आय में न केवल 4 गुना वृद्धि हुई; अपितु पारम्परिक विधि से क्लोनल मूलवृन्त में परिवर्तन का सपना भी पूरा हो गया है। श्री कुमार अन्य किसानों को प्रशिक्षण तथा प्रेरित करके क्षेत्र में इस प्रौद्योगिकी अपनाने वाले वाले प्रथम व्यक्ति तथा इस तकनीक के ब्रांड एंबेसडर बन गए। **(स्रोतः आईसीएआर)**

6. **थार शीतल ककड़ी की किस्मः** ककड़ी के इस किस्म की प्रथम कटाई 45-50 दिन मे हो जाती है। फलो की लम्बाई 25-30 सेंटीमीटर होती है जो कि खाने योग्य अवस्था मे हल्के हरे रंग के होते हैं। फल कड़वाहट से मुक्त होते हैं। यह बसंत-ग्रीष्म और खरीफ के मौसम में खुले मैदान की परिस्थितियों में खेती के लिए समान रूप से उपयुक्त है और लो टनल ढाचों के अन्दर बे-मौसमी खेती के लिए भी उपयुक्त है। इसकी उपज 150-200 क्विंटल/हेक्टेयर है जो कि बुवाई के मौसम, प्रचलित जलवायु परिस्थितियों, प्रबंधन प्रथाओं, कटाई के चरण आदि के आधार पर निर्भर करती है। यह गर्मी के मौसम में गर्म शुष्क परिस्थितियों में उच्च तापमान (42 ^{0}C तक) पर फलत करने में सक्षम है। **(स्रोतः सीआईएएच)**

7. **पूसा जे जी 16-जलवायु स्मार्ट सूखा प्रतिरोधी चने की किस्मः** ICAR-IARI, नई दिल्ली, अपने JNKV, जबलपुर के सहयोग से, आर वी एस केवी, ग्वालियर और आई सी

आर आई एसएटी, पटानचेरु हैदराबाद ने सूखा प्रतिरोधी और अधिक उपज देने वाली चने की किस्म पूसा जे जी 16 विकसित की। पूसा जे जी 16 मध्य प्रदेश, बुंदेलखंड यूपी, छत्तीसगढ़, दक्षिणी राजस्थान, महाराष्ट्र के मध्य क्षेत्र के सूखा प्रभावित क्षेत्र और गुजरात, जहाँ टर्मिनल सूखा एक बड़ी समस्या है और कभी-कभी उपज का 50-100% नुकसान होता है, में उत्पादकता बढ़ाएगी। इस किस्म को जीनोमिक असिस्टेड ब्रीडिंग तकनीकों का उपयोग करके विकसित किया गया था जिसमे पैतृक किस्म जे जी 16 में ICC 4958 से सूखा सहिष्णु जीन स्थानान्तरित करते है।**(स्रोतः आईसीएआर-आईएआरआई)।**

8. **अमेरिकी नियामकों द्वारा अनुमोदित आनुवंशिक रूप से संशोधित बैंगनी टमाटरः** टमाटर को पहले से मौजूद किस्मों की तुलना में 10 गुना अधिक एंटीऑक्सीडेंट का उत्पादन करने के लिए जीन संपादित किया गया है। विकास के एक दशक से अधिक समय के बाद संयुक्त राज्य अमेरिका के कृषि विभाग (यू एस डी ए) द्वारा पोषक रूप से बढ़ाए गए बैंगनी टमाटर को उगाने के लिए सुरक्षित माना गया है। टमाटर को पहले से मौजूद किस्मों की तुलना में 10 गुना अधिक एंटीऑक्सीडेंट का उत्पादन करने के लिए जीन संपादित किया गया है। 2008 में जर्नल नेचर बायोटेक्नोलॉजी में एक आकर्षक अध्ययन प्रकाशित हुआ था। शोध में टमाटर के उस प्रकार के बारे में बताया गया है जिसे एंथोसायनिन नामक उच्च मात्रा में एंटीऑक्सिडेंट का उत्पादन करने के लिए जीन संपादित किया गया था। एंथोसायनिन स्वाभाविक रूप से बहुत सारे खाद्य पदार्थों में पाया जाता है, जैसे कि ब्लूबेरी और लाल गोभी। वे उन खाद्य पदार्थों में बैंगनी वर्णक के लिए जिम्मेदार हैं और हृदय रोग मधुमेह के कम जोखिम सहित कई प्रकार के स्वास्थ्य लाभों से जुड़े हैं। **(स्रोतः रॉयल सोसाइटी ऑफ केमिस्ट्री)**।

9. **लद्दाख के प्रसिद्ध खुबानी की रकसे कार्पो किस्म को मिला पहला जीआई टैगः** लद्दाख में उगने वाले अन्य नौ फलों में, खुबानी लेह और कारगिल दोनों जिलों में बड़ी खेती के साथ एक महत्वपूर्ण फल है। लद्दाखी खुबानी रक्त से कारपो ने अपना पहला भौगोलिक संकेत (जीआई) प्राप्त किया। यह अत्यधिक माँग वाली जीआई टैग मान्यता 20 वर्षों के लिए दी गई है। नौ अन्य वस्तुओं के साथ, रकसे कार्पो खुबानी को हाल ही में जीआई टैग सूची में पंजीकृत किया गया है। खुबानी की तीस से अधिक विभिन्न किस्में उगाने के बावजूद, रकसे कार्पो किस्म लद्दाख क्षेत्र के लिए विशिष्ट है। लद्दाख की यह अनूठी खुबानी किस्म सफेद गिरी के साथ स्वाद और जीवंतता में अद्वितीय है। इसके अतिरिक्त, कारगिल के लिए खुबानी को एक जिला एक उत्पाद के रूप में प्रचारित किया जा रहा है। यह शाम क्षेत्रों (निचले लद्दाख) में विशेष बहुतायत के साथ पूरे लद्दाख में व्यापक रूप से वितरित किया जाता है, जिसमें धा-हानु, गरखोन, स्करबुचन, डोमखर, वानला, खलत्से और टिमोसगैंग और साथ ही कारगिल शामिल हैं। **(स्रोतः आकाशवाणी समाचार)।**

10. **हरी मिर्च पाउडर बनाने की विधिः** व्यावसायिक रूप से लाल मिर्च पाउडर मसाले के रूप में बाजार में उपलब्ध है। इसके नियमित सेवन से कई लोगों को गैस की समस्या हो जाती है। हरी मिर्च पाउडर के सेवन के बाद गैस्ट्रिक समस्या को कम किया जा सकता है। इसके अलावा लाल मिर्च पाउडर उपभोगताओं को कोई पोषण या स्वास्थ्य लाभ नहीं देता है। आईसीएआर-इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ वेजिटेबल रिसर्च, वाराणसी ने हरी मिर्च पाउडर की तकनीक विकसित की है जिसमें 94-96% क्लोरोफिल, 35-38mg/100 ग्राम विटामिन सी और 0.64-0.66% कैप्सिसिन सामग्री होती है। इसके अलावा, परिवेश भंडारण पर पाउडर की 8-10 महीने की उपभोक्ता स्वीकार्यता है। **(स्रोतः agriinnovativeindia.in)**

11. **बादाम के लिए प्रिडिक्टर और प्लानर (PPA) सॉफ्टवेयर एप्लिकेशनः** आइ सी ए आर- सेंट्रल इंस्टीट्यूट ऑफ टेम्परेट हॉर्टिकल्चर (CITH) ने बादाम के लिए प्रिडिक्टर और प्लानर (PPA) सॉफ्टवेयर एप्लिकेशन बनाया है। पीपीए अपनी तरह का एक पहला सॉफ्टवेयर एप्लिकेशन है। इसका उपयोग बादाम की फसल के लिए एक क्षेत्र की उत्पादन क्षमता का पता लगाने के लिए किया जा सकता है और आगे फसल के लिए उपयुक्तता वर्ग और क्षेत्र की उपयुक्तता का सुझाव दे सकता है। सुझाव, बादाम के तहत आने वाले क्षेत्र की सीमा पर आधारित हैं। एप्लिकेशन का उपयोग नए बागों के साथ-साथ स्थापित बागों की स्थापना के लिए किया जा सकता है। एप्लिकेशन की एक अन्य महत्वपूर्ण विशेषता ''उपज भविष्यवाणी'' है जो अग्रिम में फसल के लिए आकस्मिक योजना तैयार करने में मदद करती है। इस प्रकार एप्लिकेशन का उपयोग उपयुक्त स्थानों पर बादाम के बागों के प्रबंधन और स्थापना के लिए किया जा सकता है जो इसके प्रतिस्थापन की संभावना को और कम कर देगा। **(स्रोतः agriinnovativeindia.in)**

12. **गर्म पानी मे घुलने योग्य आँवला-हर्बल गोलीः** आई सी ए आर-सी आई एस एच ने पहले पाउच आधारित आंवला चाय विकसित किया था। हालाँकि, यह पर्यावरण के अनुकूल नहीं

था क्योंकि पाउच को नष्ट करना एक समस्या थी। इसलिए, स्वघुलनशील आंवला-हर्बल गोली विकसित किया गया, जिसने पाउच को फेंकने की समस्या खत्म हो गई। गोली पूरी तरह से घुलनशील है और अवशेषों के रूप में कोई अखाद्य भाग नहीं छोड़ती है। गर्म पानी में फैलने वाली आंवला-हर्बल टैबलेट को आँवला, जड़ी-बूटियों और अन्य अवयवों का उपयोग करके विकसित किया गया था और यह उच्च स्वास्थ्य -समर्थक गुणों वाले एंटी-ऑक्सीडेंट यौगिकों से भरपूर है। गर्म पानी में डुबोने पर ये गोलियां बिना हिलाए बहुत आसानी से फैल जाती हैं जो यात्रा के दौरान उपयोग करने के लिए अनुकूल बनाती हैं। **(स्रोतः agriinnovativeindia.in)**

13. **मैंगो वाइनः** आई सी ए आर-सी आई एस एच, लखनऊ द्वारा विकसित मैंगो वाइन उच्च बाजार क्षमता वाला काफी अच्छा उत्पाद है। इसमें एक अच्छी शराब के आवश्यक गुणों के साथ आम के फल का अंतर्निहित मनभावन स्वाद है। लगभग 10 प्रतिशत इथेनॉल के साथ मैंगो वाइन भी प्रसिद्ध एंटी-ऑक्सीडेंट यौगिकों कैरोटीन और एस्क बिंक एसिड से भरपूर है। इसमें अत्यधिक शक्तिशाली एंटी-कैंसरस बायो-एक्टिव कंपाउंड ल्यूपोल भी शामिल है। इसके पास अच्छी मानसिक राहत देने वाली खुबी भी है। चूंकि संस्थान की मैंगो वाइन उत्पादन तकनीक के दौरान कोई आसवन प्रक्रिया शामिल नहीं है, इसलिए उत्पाद के पोषण गुणों को बेहतर संरक्षित किया जाता है। **(स्रोतः agriinnovativeindia.in)**

14. **उन्नत सांबा मंसूरी (ISM):** ICAR-भारतीय चावल अनुसंधान संस्थान (ICAR-IIRR), हैदराबाद और CSIR-सेंटर फॉर सेल्युलर एंड मॉलिक्यूलर बायोलॉजी (CCMB), हैदराबाद के संयुक्त सहयोग द्वारा नवीन साधन के आणविक मार्कर-सहायता प्राप्त चयन विधि से सांबा मंसूरी (ISM) चावल की एक जीवाणु झुलसा प्रतिरोधी किस्म विकसित की गई। ISM 5.5-6 t/ha की उपज क्षमता के साथ उत्कृष्ट खाना पकाने और खाने की गुणवत्ता वाली एक महीन और मध्यम-पतली अनाज की किस्म है। यह बैक्टीरियल ब्लाइट रोग के खिलाफ अत्यधिक प्रतिरोधी है, क्योंकि इसमें आणविक मार्कर आधारित तकनीक का उपयोग करके तीन प्रमुख प्रतिरोध जीन, Xa21, xa13 और xa5 शामिल हैं। हाल ही में इसके लो ग्लाइसेमिक इंडेक्स (50.9) चावल होने की भी पुष्टि हुई है। यह देश के पहले जैव प्रौद्योगिकी व्युत्पन्न उत्पादों में से एक है और इसे पौध किस्मों के संरक्षण और किसान अधिकार प्राधिकरण के साथ पंजीकृत किया गया है। **(स्रोतः आईसीएआर-आईआईआरआर)।**

15. **प्रौद्योगिकी हस्तांतरण 'एचटी ट्रेट डोनर राइस जीनोटाइप टेक्नोलॉजी'':** आईसीएआर-इंडियन एग्रीकल्चरल रिसर्च इंस्टीट्यूट, नई दिल्ली के वैज्ञानिकों द्वारा विकसित एचटी ट्रेट डोनर राइस जीनोटाइप टेक्नोलॉजी' को एग्रीनोवेट इंडिया लिमिटेड (एजीआईएन) द्वारा संचालित मैसर्स नुजिवीडू सीड लिमिटेड को हस्तांतरित किया गया था। डॉ. एके सिंह, निदेशक, भाकृअनुप-आईएआरआई ने इथाइल मीथेन सल्फोनेट प्रेरित खरपतवारनाशी सहिष्णु चावल म्यूटेंट का उपयोग करते हुए इमाजेथापेयर 10% एसएल (100 ग्राम एआई) के लिए सहिष्णुता रखने वाले गैर-जीएम खरपतवारनाशी-सहिष्णु चावल जीनोटाइप के विकास के बारे में जानकारी दी। यह तकनीक खरपतवारों के कारण होने वाली आर्थिक/उपज हानि को कम करके किसानों की आय बढ़ाने में महत्वपूर्ण योगदान देगी और चावल में संगत शाकनाशी स्पेक्ट्रम को भी व्यापक बनाएगी। **(स्रोतः एग्रीनोवेट इंडिया लिमिटेड)**

संकलनः डॉ. गोविंद विश्वकर्मा,
शिक्षण सह अनुसंधान सहयोगी, फल विज्ञान विभाग

Swachh Bharat Abhiyan

रानी लक्ष्मी बाई केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालय
झाँसी-284003 (उ.प्र.) भारत

PARAMPARAGAT KRISHI VIKAS YOJANA
ORGANIC FARMING GAINS MOMENTUM

आत्मनिर्भर भारत अभियान